ऋग्वेदमहाभाष्यम्

(संस्कृतार्यभाषाविभूषितम्)

महर्षि स्वामी दयानन्दसरस्वती कृत ऋग्वेदभाष्यस्य व्याख्यानम्

प्रथमो भागः

म. म. आचार्य विश्वश्रवाः व्यासः वेदाचार्यः एम. ए.

ओं तत् सत् परब्रह्मणे नमः

ऋग्वेदमहाभाष्यम्

संस्कृतार्यभाषाविभूषितम्

(अन्विताथ॑प्रदीपः)

महर्षि–

स्वामी दयानन्दसरस्वतीकृत ऋग्वेदभाष्यस्य व्याख्यानम्

प्रथमो भागः

व्याख्याता

महामहोपाध्याय–

प० शिवदत्तदाधिमथशिष्यः

महामहिमोपाध्याय

आचार्य विश्वश्रवाः व्यासः एम-ए.

वेदाचार्य साहित्याचार्य इत्यादि

भू० पू० प्रोफ़ेसर तथा रिसर्च स्कालर संस्कृत विभाग, अनुसन्धान विभाग डी० ए० वी० कालेज लाहौर, विश्वेश्वरानन्द रिसर्च इन्स्टीटयूट लाहौर। मेम्बर ऐग्ज़ीक्युटिव कौंसिल बनारस संस्कृत यूनिवर्सिटी वाराणसी

तत्सहधर्मिणी टिप्पणी-सूची-स्वर संचार निर्मात्री

विद्यावारिधि (अनु०)

सुश्री श्रीमतीदेवी शास्त्री एम-ए०

वेदाचार्य (काशीप्राप्तस्वर्णपदक)

अजमेर नगरे

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितम्

प्रथमावृत्तिः १९०० | विक्रम सम्वत् २०३४ | मूल्यम् २५)

दयानन्दाब्द १५३

सन् १९७७

ओं तत् सत् परब्रह्मणे नमः

ऋग्वेदमहाभाष्यम्

संस्कृतार्यभाषाविभूषितम्

(अन्वितार्थप्रदीपः)

महर्षि-
स्वामी दयानन्दसरस्वतीकृत ऋग्वेदभाष्यस्य व्याख्यानम्

प्रथमो भागः

व्याख्याता
महामहोपाध्याय-
प० शिवदत्तदाधिमथशिष्यः
महामहिमोपाध्याय
आचार्य विश्वश्रवाः व्यासः एम-ए.
वेदाचार्य साहित्याचार्य इत्यादि
भू० पू० प्रोफ़ेसर तथा रिसर्च स्कालर संस्कृत विभाग, अनुसन्धान विभाग डी० ए० वी० कालेज लाहौर, विश्वेश्वरानन्द रिसर्च इन्स्टीटयूट लाहौर। मेम्बर ऐग्ज़ीक्युटिव कौंसिल बनारस संस्कृत यूनिवर्सिटी वाराणसी

तत्सहधर्मिणी टिप्पणी-सूची-स्वर संचार निर्मात्री
विद्यावारिधि (अनु०)
सुश्री श्रीमतीदेवी शास्त्री एम-ए०
वेदाचार्य (काशीप्राप्तस्वर्णपदक)

अजमेर नगरे
वैदिकयन्त्रालये मुद्रितम्

प्रथमावृत्तिः १९०० | विक्रम सम्वत् २०३४ | मूल्यम् 50
दयानन्दाब्द १५३
सन् १९७७

पृष्ठ विवरणम्

—प्रकाशनस्थानम्—

वेदमन्दिर महापरिषत्—सार्वदेशिक परोपकारिणी सभा
९९ बाजार मोतीलाल बरेली (उ० प्र०) भारत (India)

स्व० रक्खाराम गम्भीर कलकत्ता



श्रीमाता यशवन्त कौर गम्भीर ने अपने स्वर्गीय पति श्री रक्खारामजी गम्भीर कलकत्ता की पुण्य स्मृत्यर्थ ३०००) तीन हजार रुपये प्रकाशनार्थ दिये और कुमुद बहन ध० प० जे० ए० पटेल पूना ने स्वयं तथा स्त्री समाज पूना द्वारा संगृहीत ५००) दिये।

विषय सूची

इत्याध्यात्मिकोऽर्थः

सत्यार्थप्रकाश के हस्तलेखविरुद्ध
मुद्रित में भ्रष्ट पाठ

अशुद्ध पाठ	शुद्धपाठ हस्तलेख में
सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः	सच्चिदानन्दायेश्वराय नमो नमः
अकार मात्र उकार मात्र और मकार	अकारमात्रा उकारमात्रा और मकार
तुम्हारा हमारा	तुह्मारा हमारा

अथ भौतिकोऽर्थः

(वेदाचार्य श्रीमती देवी शास्त्री एम-ए०)

(प्रथममन्त्र व्याख्यान में उद्धृत ग्रन्थों वा ग्रन्थकारों के नाम)

अथर्ववेद ।
अनुवाकानुक्रमणी ।
अमर कोष ।
अरविन्द ।
अलंकार सर्वस्व-
कार ।
आख्यातिक ।
आत्मानन्द ।
आनन्दतीर्थ ।
आरण्य संहिता ।
आर्यमुनि ।
आर्याभिविनय ।
आलंकारिक ।
आश्वलायन ।
उणादिकोष ।
उणादि कोष-
(महर्षि व्याख्या) ।
उपसर्गवृत्ति ।
उज्वलदत्त ।
उदयन ।
उपलेखसूत्र ।
उवट ।
ऋग्वेद ।
ऋग्वेद पदपाठ ।
ऋक्संहिता-
हस्तलेख ।
ऋग्वेद प्रातिशाख्य ।
ऋग्वेद भाष्य ।
ऋग्भाष्य टीका
(मध्वरचित) ।
ऋग्वेदादि भाष्य-
भूमिका ।
ऋग्विधान ।
ऋक्सर्वानुक्रमणी ।
ऐतरेयालोचन ।
ऐतरेय ब्राह्मण ।
औणादिक-
पदार्णव ।
कठोपनिषत् ।
कपालि ।
कल्प ।
कविकल्पद्रुम ।
काण्व ।

काव्यप्रकाश ।
किरातार्जुनीयम् ।
कुमारिल भट्ट ।
कैयट ।
कैवल्योपनिषत् ।
कोषकाराः ।
कौशीतकि ब्राह्मण ।
क्षेमकरणदास-
त्रिवेदी ।
खेटयानप्रदीपिका ।
गालव ।
गीता ।
गेल्डनर
(जर्मन स्कालर) ।
गोपथब्राह्मण ।
गोवर्धन ।
गोविन्द स्वामी ।
ग्रिफिथ ।
चतुर्वेदविषय-
सूची ।
चतुर्वेदविषय-
सूची मुखपृष्ठ ।
चरण व्यूह ।
चरण व्यूह टीका ।
छन्दः सूची
(महर्षिकृता) ।
छन्दः संख्या ।
छान्दोग्योपनिषत् ।
जगन्नाथ ।
जैमिनि
न्यायमाला ।
जैमिनीय ब्राह्मण ।
जैमिनीयोप-
निषत् ।
ज्योतिषशास्त्र ।
तत्त्वबोधिनीकार ।
ताण्ड्यब्राह्मण ।
तुलसीराम स्वामी ।
तैत्तिरीय संहिता ।
तैत्तिरीय संहिता-
पदपाठ ।
तैत्तिरीयोप-
निषत् ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण ।
तैत्तिरीयारण्यक ।
दशपाद्युणादि-
वृत्ति ।
दुर्ग ।
धातुपाठ ।
नागानन्द नाटक ।
नाट्यशास्त्र ।
नारायण ।
नारद ।
नारदीय शिक्षा ।
निघण्टु ।
निघण्टु भाष्यकार ।
निरुक्त ।
निरुक्त परिशिष्ट ।
निरुक्त हस्तलेख ।
निरुक्त के समझने
में प्राचीनों की
भूल ।
निदान सूत्र ।
निर्भुजसंहिता ।
नृपति कुम्भकर्ण ।
न्यायमञ्जरी ।
न्यास ।
प्रक्रिया सर्वस्व ।
पञ्चमहायज्ञविधि-
भाष्यम् ।
प्रतृण्ण संहिता ।
पदपाठ ।
पदार्थ प्रदीप ।
पिङ्गल ।
प्राणाग्निहोत्रोप-
निषत् ।
पेरू ।
बालखिल्य ।
बृहद्देवता ।
बृहदारण्यकोप-
निषत् ।
बौद्धायन धर्मसूत्र ।
भट्टभास्कर ।
भरत ।
भारद्वाज ।

भर्तृहरि ।
भावार्थ प्रदीप ।
(विस्तृत) भाष्य
महर्षि का ।
भाष्य (संस्कृत
आर्यभाषा गुज-
राती मराठी
(आदर्शाङ्क) ।
भाष्यवार्तिक ।
भ्रान्तिनिवारण ।
मनुस्मृति ।
मम्मट ।
महाभारत ।
महानारायणोप-
निषत् ।
महेश्वर ।
माधवीया-
धातुवृत्ति ।
महाभाष्य ।
महीदास ।
महीधर ।
माण्डूक्योपनिषत् ।
मीमांसा दर्शन ।
मुकुन्द झा ।
मुण्डकोपनिषत् ।
मुद्गल ।
मेघदूत ।
मैक्समूलर ।
मैक्डानल ।
मैक्डानल पत्र ।
मैत्र्युपनिषत् ।
मोनियर-
विलियम ।
यजुर्वेद ।
यजुर्वेद भाष्य ।
यजुर्वेद पदपाठ ।
यजुः प्रातिशाख्य ।
यजुः सर्वानुक्रमणी ।
यज्ञपद्धतिमीमांसा ।
यन्त्रकल्प ।
यानबिन्दु ।
रघुवंश ।
रत्नावली ।

राजवाडे ।
रामायण ।
लक्ष्मणस्वरूप ।
लौगाक्षिस्मृति ।
वर्णनीति ।
वाक्यपदीय ।
वाचस्पति मिश्र
वात्स्य ।
वाष्कल ।
विमानचन्द्रिका ।
विमानशास्त्र ।
विमानशास्त्र-
वृत्ति ।
विलसन ।
विश्वबन्धु ।
विश्वप्रदीप ।
विश्वम्भर ।
वात्स्यायनभाष्य ।
वेङ्कटमाधव ।
वेदभाष्य के अङ्क ।
वेदाङ्ग छन्दोग्रन्थ ।
व्योम यानार्थ-
प्रकाश ।
व्योमयान तन्त्र ।
वेदार्थदीपिका ।
वेङ्कट माधव
छन्दोऽनुक्रमणी ।
वेङ्कट माधव ।
आख्यातानु-
क्रमणी ।
माधव छन्दो
ऽनुक्रमणी ।
वेदान्तदर्शन ।
वैदिक मुनि
(हरप्रसाद) ।
वैदिक संशोधन
मण्डल ।
वैयाकरण
सिद्धान्तकौमुदी ।
शतपथ ब्राह्मण ।
शतपथ भाष्य ।
शब्दानुशासन ।
शबर स्वामी ।

शांकरभाष्य ।
शाकलचरण ।
शांखायन ।
शिवशंकर काव्यतीर्थ ।
शुक्रनीति ।
शैशिरि ।
शौनकानुक्रमणी ।
श्वेतवनवासी ।
षड्गुरुशिष्य ।
षड्विंश ब्राह्मण ।
सन्ध्यापद्धति-मीमांसा ।
सत्यार्थप्रकाश ।
संगीतराज ।
संगीतरत्नाकर ।
संगीत दामोदर ।
संगीत सार ।
संगीत शास्त्र ।
संज्ञानसूक्त ।
संस्कारविधि ।
संहितोपनिषद्-ब्राह्मण ।
सत्यव्रत साम-श्रमी ।
सामवेद पदपाठ ।
सिद्धेश्वर वर्मा ।
सिद्धाञ्जनभाष्य ।
सूर्यसिद्धान्त ।
स्वामी दयानन्द-सरस्वती ।
सांख्यदर्शन ।
सातवलेकर ।
सायणभाष्य-हस्तलेख ।
सायणभाष्य-(इन्दौर बागल कोटा पूना हस्तलेख) ।
सायणभाष्य-(राजाराम शिव-राम सम्पादित) ।
सायणभाष्य-(मैक्समूलर सम्पादित) ।
सायणभाष्य-(पुण्यपत्तन सम्पादित) ।
साहित्यदर्पण (तद्वक्त्रं यदि०) पृष्ठ १८ ।
स्कन्द ।
हरदत्त ।

१—स्कन्द स्वामी (सम्वत् ६८७) कृत प्रथम मन्त्र के भाष्य का भाषार्थ—

(अ॒ग्निम्) अग्नि (की) (ई॒ळे) स्तुति करता हूं (पु॒रोहि॑तम्) शान्तिक पौष्टिक कर्मों से जो राजा को आपत्तियों से बचाता है तत्स्थानी जो है। (य॒ज्ञस्य॑) जो यज्ञ में अधिकृत यजमान का (आपत्तियों से बचाने वाला है। (पु॒रोहि॑तम्) जो पूर्व दिशा में आवहनीय रूप से स्थित है। (य॒ज्ञस्य॑ + दे॒वम्) मनुष्यों के लिये जो यज्ञ का देने वाला है। (य॒ज्ञस्य॑ + होता॑रम् + ऋ॒त्विज॑म्) जो यज्ञ का होता नाम वाला ऋत्विक् है। (ऋ॒त्विज॑म्) ऋतुऋतु में यष्टा = जो जो याग काल है तब तब देवों का यष्टा जो है। (होता॑रम्) जो देवों को बुलाने वाला है। (र॒त्न॒धात॑मम्) जो रत्नों को अत्यन्त देने वाला है।

२—वेङ्कटमाधव (सम्वत् ११००–१२००) कृत प्रथम मन्त्र के भाष्य का भाषार्थ—

(अ॒ग्निम्) अग्नि (की) (ई॒ळे) स्तुति करता हूँ। (य॒ज्ञस्य॑ + पु॒रोहि॑तम्) जो यज्ञ की उत्तर वेदि में आगे स्थित है। (दे॒वम्) जो द्युस्थानी है। (ऋ॒त्विज॑म्) जो स्वस्वकाल में देवों का यजनकर्ता है। (होता॑रम्) जो देवों को बुलाने वाला है। (र॒त्न॒धात॑मम्) जो रमणीय धनों को अत्यन्त देने वाला है।

३—सायण (सम्वत् १३७२–१४४४) कृत प्रथम मन्त्र के भाष्य का भाषार्थ—

मैं होता (अ॒ग्निम्) अग्नि नामक देव की जो देवों का सेनानी है उस की। (ई॒ळे) स्तुति करता हूं। (य॒ज्ञस्य॑ + पु॒रोहि॑तम्) जो राजा के पुरोहित के समान यज्ञ का पुरोहित है = अपेक्षित होम का सम्पादक है। अथवा जो यज्ञ के पूर्व भाग में आहवनीय रूप से स्थित है। (दे॒वम्) जो दानादिगुणयुक्त है। (य॒ज्ञस्य॑ + दे॒वम्) जो यज्ञ का प्रकाशक है। (होता॑रम् + ऋ॒त्विज॑म्) जो देवों के यज्ञ में होता नाम वाला ऋत्विक् है। (होता॑रम्) जो देवों को बुलाने वाला है। (ऋ॒त्विज॑म्) जो ऋत्विक् के समान यज्ञ का निर्वाहक है। (र॒त्न॒धात॑मम्) जो याग फल रूप रत्नों को अत्यन्त धारण करने वाला, पोषण करने वाला और दाता है।

४—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती (संवत् १८८१=१९४०) कृत

प्रथममन्त्र में व्याख्यात पदों के अर्थ

(अग्नि) (आध्यात्मिक अर्थ में)

१—सब के अग्र रहने वाला सर्वश्रेष्ठ। २—सब शुभ कार्यों में जो सदा प्रथम स्थापित किया जाता है। ३—सर्वज्ञ। ४—जो वेदादि शास्त्रों से जाना जाता है। ५—सर्वव्यापक। ६—जो सब जगह प्राप्त किया जा सकता है। ७—पूर्णकाम। ८—विद्वान् धर्मात्मा मुमुक्षुओं से सर्व सुखप्राप्त्यर्थ जो प्राप्त किया जाता है। ९—धर्मात्माओं का आदर करने वाला। १०—धर्मात्माओं से जो पूजा किया जाता है।

(भौतिक अर्थ में)

११—अपने स्वरूप को प्राप्त कराने वाला। १२—सब को रूक्ष करने वाला। १३—गतिशील। १४—भस्म करने वाला। १५—स्थानान्तर को प्राप्त करने वाला। १६—रूपों को प्रकट करने वाला। १७—अग्नि शब्द सब देवताओं का वाचक है।

(ईळे) (आध्यात्मिक अर्थ में)

१—स्तुति करता हूं। २—प्रार्थना करता हूं। ३—पूजा करता करता हूं। ४—वारम्बार इच्छा करता हूं। ५—गुणों का अन्वेषण करता हूं।

(भौतिक अर्थ में)

६—गुणों का वर्णन करता हूं। ७—वारम्बार इच्छा करता हूं। ८—यानादि में प्रेरित करता हूं। ९—गुणों का अन्वेषण करता हूं।

(पुरोहितम्) (आध्यात्मिक अर्थ में)

१—सृष्टि से पूर्व स्थित परमाणु आदि जगत् का धारण करने वाला। २—सब देहधारियों की उत्पत्ति से पूर्व सकल पदार्थ उत्पन्न करके उनका धारण पोषणकर्ता। ३—स्वभक्त धर्मात्माओं की भक्ति के आरम्भ होने से पूर्व ही वेद विज्ञान आदि दान द्वारा धारण पोषण करने वाला। ४—सर्वाधार। ५—सर्वपोषक।

(भौतिक अर्थ में)

६—पदार्थों के उत्पन्न करने के समय से पूर्व भी छेदन धारण आकर्षण आदि गुणों का धारण करने वाला। ७—विमान, कला-गीत वाद नृत्य आदि, कौशल=शीघ्र कार्य करना, क्रिया=चक्रवत् गति, प्रचालन=यानों को चलाना आदि शिल्पविद्यास्वरूप को प्रयोग से पूर्व ही धारण करने वाला। ८—सब विद्याओं के प्रथम हेतु। ९—आदि मूल।

(यज्ञ) (आध्यात्मिक अर्थ में)

१—विद्वानों का सत्कार। २—सत्संगति। ३—विद्यादिदान। ४—विद्वानों से की हुई पूजा। ५—महिमा। ६—कर्म। ७—अग्निहोत्रादि अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ। ८—विद्याविज्ञान योगादि। ९—जगत्।

(भौतिक अर्थ में)

१०—शिल्प क्रियाओं से उत्पन्न होने योग्य पदार्थ समूह। ११—संगतिकरण रूप शिल्प-विद्यादिमय यज्ञ। १२—शिल्पविद्यादि दान।

(देव) (आध्यात्मिक अर्थ में)

१—सुखों के दाता। २—सब जगत् का प्रकाशक। ३—भक्तों को आनन्द देने वाला। ४—अधर्म अन्यायकारी और काम क्रोधादि की विजयेच्छा से पूर्ण। ५—सब से प्रार्थना करने योग्य। ६—प्रकाशमान।

(भौतिक अर्थ में)

७–व्यावहारिक विद्या का प्रकाशक। ८–प्रदीप्त होने वाला = प्रज्वलित होने वाला।

(ऋत्विक्) (आध्यात्मिक अर्थ में)

१–प्रतिसृष्टि की उत्पत्ति के समय संसार को संगत करने वाला = स्थूल सृष्टि का रचयिता। २–सब ऋतुओं में पूजा के योग्य। ३–ऋत्विक् के समान वर्तमान ज्ञानादि यज्ञ का सम्पादन करने वाला। ४–सब जगत् का रचने वाला।

(भौतिक अर्थ में)

५–सर्व ऋतु सुखकर शिल्प साधनों को प्राप्त कराने वाला। ६–यथासमय शिल्पविद्या साधन का हेतु। ७–सर्वशिल्पविद्या व्यवहार का प्रकाशक। ८–ऋत्विक् के समान वर्तमान।

(होता) (आध्यात्मिक अर्थ में)

१–सब जगत् के लिये सब पदार्थों का देने वाला। २–मोक्ष के समय प्राप्त मोक्ष जनों का ग्रहण करने वाला। ३–वर्तमान और प्रलय में सब जगत् का आधारभूत। ४–संहारकर्ता।

(भौतिक अर्थ में)

५–देने वाला।

(रत्नधातमं) (आध्यात्मिक अर्थ में)

१–प्रकृत्यादि पृथिव्यन्त का तथा ज्ञान हीरक सुवर्णादि का जीवों के देने के लिये अत्यन्त धारण करने वाला। २–उपर्युक्त पदार्थों को जीवों के लिये अत्यन्त देने वाला। ३–सुवर्ण आदि रत्नों को अत्यन्त देने वाला।

(भौतिक अर्थ में)

४–शिल्पियों को रत्नों से अत्यन्त पुष्ट करने वाला। ५–रत्नादि विद्या का आधार।

५–विल्सन (H. H. wilson M. A. F. R. S.)

I (ई॒ळे) glorify (अ॒ग्निम्) the fire (पु॒रोहि॑तम् + य॒ज्ञस्य॑) the high Priest of the Sacrifice (दे॒वम्) the divine (ऋ॒त्विजं॑म्) the ministrant (होता॑रम्) who presents the oblation (to the gods) (र॒त्न॒धात॑मम्) and is Possessor of great wealth.

६–ग्रिफिथ (RALPH. T. H. GRIFITH. M. A. C. I. E.

I (ई॒ळे) loud (अ॒ग्निम्) Agni (पु॒रोहि॑तम्) chosen Priest (दे॒वम्) god (य॒ज्ञस्य॑ + ऋ॒त्विजं॑म्) minister of Sacrifice (होता॑रम्) the Hotar (र॒त्न॒धात॑मम्) lavishest of wealth.

७–अरविन्द (Shri Aurobsndo).

I (ई॒ळे) adore (अ॒ग्निम्) the flame (पु॒रोहि॑तम्) the vicar (य॒ज्ञस्य॑+दे॒वम्+ऋ॒त्विजं॑म्) the divine Ritwik of the Sacrifice (होता॑रम्) the Summoner (र॒त्न॒धात॑मम्) who most founds of the eastasy.

(वेदाचार्य श्रीमती देवी शास्त्री एम० ए०)

श्रों तत् सत् परब्रह्मणे नमः

अथ

ऋग्वेदमहाभाष्यम्

अन्वितार्थप्रदीपः

स्वयम्भुवं कविं[१] नत्वा स्मृत्वा गुरुजनानपि ।
ऋषीन् मुनींस्तथाचार्यान् सर्वान् सच्छास्त्रकारकान् ॥ १ ॥
दयानन्दर्षिभाष्येऽयं कृतनक्तन्दिनश्रमः ।
विश्वश्रवास्तदाचार्यो व्यासो व्याख्यातुमुद्यतः ॥ २ ॥
पदार्थश्चान्वितार्थश्च भावार्थश्चेति यत् त्रिधा ।
ऋषेर्विभक्तं सद् भाष्यं तत् तथा व्याकरिष्यते ॥ ३ ॥
प्रतिमन्त्रमृषिश्छन्दः स्वरो दैवतमेव च ।
पदपाठश्च ऋषिणा निर्दिष्टानि सभूमिकम् ॥ ४ ॥
प्रदीपैर्विवरिष्येऽहं चतुर्भिरखिलं तु तत् ।
मीमांसां चान्यभाष्याणां करिष्ये तत्त्वदर्शिनीम् ॥ ५ ॥
पदार्थस्यान्वितार्थस्य भावार्थस्य प्रकाशकाः ।
प्रदीपास्त्रय आख्याता अन्वर्थैर्नामभिर्युताः ॥ ६ ॥

१—"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः" यजु० ४० । ८ ॥

दैवतर्ष्यादिविषया मीमांसा यत्र संतता ।
विश्वप्रदीप इत्युक्तः स तुर्योऽत्र प्रदीपकः ॥ ७ ॥

प्रदीपाः संहता ह्येते प्रमाणपरिबृंहिताः ।
ऋग्वेदस्य महाभाष्यं विज्ञातव्या विवेकिभिः ॥ ८ ॥

ऋषिऋग्भाष्यगूढोक्तेः स्ववगाहनसिद्धये ।
नद्या इवावताराः स्युः प्रदीपा अखिला इमे ॥ ९ ॥

विषमेषु स्थलेष्वेते सुस्पष्टप्रतिपत्तये ।
अमी प्रदीपा विज्ञेया दीपस्तम्भा इवोदधौ ॥ १० ॥[1]

आलोचयन्तु तान् धीरा विद्यावन्तो विमत्सराः ।
शुद्ध्यशुद्धी सुवर्णार्थे ज्ञानवह्नौ विदेलिमे ॥ ११ ॥

भाष्याब्धिरतिगम्भीरस्तितीर्षुश्चाविशारदः ।
तीर्णोऽस्मि वा निमग्नोऽस्मि कालादस्य विनिर्णयः ॥ १२ ॥

इयं प्रसिद्धा ब्राह्मी वाक् "श्रद्धया सत्यमाप्यते[2]" ।
सा श्रद्धैव महापोतो भाष्याब्धितरणे मम ॥ १३ ॥

या निष्ठा मे दयानन्दे या च पूर्वऋषिष्वपि ।
या वेदे या परेशे च सा च मेऽत्रावलम्बनम् ॥ १४ ॥

त्वोतारामसुधीसुतो धनवतीगर्भाच्च जातो बुधो,
धर्मामात्यपदं य आर्यजगतोऽध्यास्ते सतामर्चितम् ।
आम्नायेऽङ्गयुते कृती परिचिती भाषासु बह्वीषु च,
काशीलब्धपदः[3] श्रुतौ विमलधीराचार्यविश्वश्रवाः ॥ १५ ॥

१—Light-House

२—यजुर्वेद १६ । ३० ॥

३—वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयवाराणसीतो लब्धप्रतिष्ठिताचार्यपदः ।

शब्दानामनुशासनं स हृदयानन्दा "दवेत् पाणिनेः"
कुद्दालाच्छिवदत्तदाधिमथतो भाष्यं च पातञ्जलम् ।
मान्याच्छ्रीपरमेश्वरात् पठितवानङ्गानि वेदस्य यः,
प्राच्यर्वाग्वि नृसिंहदेवविदुषो यो दर्शनान्यध्यगात् ॥ १६ ॥
ज्वालापुरीयं समुपेत्य यश्च गुरोः कुलं कोविदरत्नमौलेः,
शास्त्राम्बुधेर्जीवसमादवाप नैपुण्यपण्यं मनसाप्यगम्यम् ।
श्रीभीमसेनाख्यगुरोर्निरुक्ते शात्रोच्चयेऽनार्षदृशामगम्ये,
शिक्षासु शिक्षामवबोधभिक्षामलब्ध तन्त्रोपनिषच्चये च ॥ १७ ॥
वेदेदंपरतांपरां गिरिधरादाप्तोचतुर्वेदतः,
झोपाह्वान् मधुसूदनाच विबुधाद् यो वेदविद्यारहः ।
शर्मण्यादिगिरोऽपि यश्च विविधा भाषाविदामुत्तमात्,
कुरैशीप्रमुखाद् विदेशवसतेरध्यैष्ट विद्वत्कुलात् ॥ १८ ॥
नानाभाषालिपिज्ञानं संपादनकला तथा ।
बहुभाषाविदः प्राप्ते 'एं० सो० वूलनर कोविदात् ॥ १९ ॥
जगन्नाथादयः सर्वे काश्यादिवासिनो मम ।
वन्द्यास्ते गुरवो येषां पूतश्चरणसेवया ॥ २० ॥
ऋषेः संचितसाहित्यं हस्तलेखादिकं च मे ।
ऋषिदृश्वा समादिक्षद् हरविलासशारदः ॥ २१ ॥

१—वैयाकरणशिरोमणिः प० हृदयानन्दः व्याकरणाचार्यः बरेलीवास्तव्यः ।
२—महामहोपाध्यायः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः प० शिवदत्तदाधिमथः ।
३—महामहोपाध्यायः प० परमेश्वरानन्द शास्त्री विद्याभास्करः साहित्याचार्यः ।
४—कवितार्किकः प० नृसिंहदेवशास्त्री दर्शनाचार्यः ।
५—पदवाक्यप्रमाणज्ञः प० भीमसेन आगरा वास्तव्यः संस्कारचन्द्रिकाकर्ता
६—महामहोपाध्यायः प० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदः व्याकरणाचार्यः न्यायशास्त्री
७—समीक्षाचक्रवर्ती विद्यावाचस्पतिः प० मधुसून ओझा जयपुरराजगुरुः ।
८—पञ्जावविश्वविद्यालये जर्मनभाषाध्यापकः डाक्टर कुरैशीमहाभागः ।
९—पञ्चनदीयविश्वविद्यालयस्थ 'ओरियन्टलकालेज लाहौर' प्रिंसिप० महाभागः
१०—दीवानबहादुर बा० हरबिलास सारडा परोपकारिणी सभा अजमेर प्रधानमन्त्री
११—आदिशब्दात् श्री मुकुन्दशास्त्री खिस्ते, प० नान्हूरामशास्त्री, प० श्यामलालः, प० हीरानन्दः, प० जगदीशचन्द्रः, प० रामचन्द्रः, प० सरयूप्रसादः, प० उदयशङ्कर भट्टाचार्य, प० त्रिवेणीदत्तः इत्यादयः साहित्यव्याकरणतीर्थाचार्याः मे गुरवः ।

बाल्ये[1] केवलमाशिषं पितुरुपैन् मातुर्नये शिक्षणम्,

मातुर्मातु[2]रजस्रकोमलतलस्पर्शैश्च यः पोषणम् ।

प्रौढो यः कृतवान् दुरुत्तरवरैस्तर्कैर्विपक्षक्षतिम्,

व्याचष्टे स ऋचां महर्षिरचितं भाष्यं प्रदीपाख्यया ॥ २२ ॥

ननु कोऽयं महर्षिः—

ब्रह्मादिजैमिनिप्रान्तऋषिवर्गप्रमाणकः ।

साक्षाद्द्रष्टा पदार्थानां ब्रह्मचारी ऋषिर्यतिः ॥ २३ ॥

पितृ[3]पितृव्य[4]कृष्णा[5]देः परा[6]नन्दान् निरञ्जनात्[7] ।

अवेच्छास्त्रं स दिव्यात्मा पूर्णा[8]नन्दात् तथा यतेः ॥ २४ ॥

व्यासाश्रमे धराल्यादौ पर्वतानामुपह्वरे ।

योगं प्राप शिवानन्दयोगानन्दादिपार्श्व[9]तः ॥ २५ ॥

धर्मसंस्थापको विप्रस्तपःस्वाध्यायसंयुतः ।

विरजा[10]नन्दशिष्योऽयं दयानन्दसरस्वती ॥ २६ ॥

लोकान्तरादन्यसृष्टेरमृताद् वा समागतः ।

पुण्यात्मा कल्पये कश्चिद् वेदोद्धारार्थमागतः ॥ २७ ॥

पाषण्डाः खण्डिता येन श्रुतयो विमलीकृताः ।

शास्त्राणां च समुद्धारः कृतस्तत्त्वप्रदर्शनात् ॥ २८ ॥

१—यदा त्रिवर्षदेशीयस्तदा पिता स्वर्गतः ।

२—दिलखुशी नाम्नी मातुर्माता ।

३—पिता—करसनजी त्रिवेदी सहस्रौदीच्यब्राह्मणः

४—पितृव्यः—अज्ञातनामा

५—श्रीकृष्णाशास्त्री

६—प० परमानन्दः

७—प० रामनिरञ्जनः

८—स्वामी पूर्णानन्दसरस्वती

९—योगी योगानन्दः, स्वामी ज्वालानन्दपुरी, स्वामी भवानीगिरिः, स्वामी शिवानन्दगिरिः प्रभृतयः

१०—प्रज्ञाचक्षुः स्वामी विरजानन्ददण्डी परिव्राजकाचार्यः

इच्छन् साम्राज्यमार्याणाम् ऋर्षिर्वेदं प्रसारयन् ।
विश्वमार्यं चिकीर्षंश्च विचचार महीतले ॥ २९ ॥

शून्यत्र्यङ्के[1] शशिमितशुभे वैक्रमे वत्सरे यो,
जीवन्मुक्तः समभवदसौ योगनिष्ठामवाप्य ।
संक्षिप्याभाष्यप[2] वरतरं मध्यमं वेदभाष्यं,
कुर्वन् विन्दुश्रुतिनवविधौ[3] वत्सरे ब्रह्म प्राप ॥ ३० ॥

स्वतन्त्रे भारते देशे प्रजातन्त्रप्रशासिते ।
प्रदेशे चोत्तरे पुण्ये बरेलीपुटभेदने ॥ ३१ ॥

रसविन्दुखयुग्मेऽब्दे[4] वैक्रमे प्रथमे दिने ।
समारब्धः प्रदीपोऽयमन्वितार्थप्रदर्शकः ॥ ३२ ॥

१—विक्रमसंवत् १९३०

२—महर्षिणा पूर्वं संक्षिप्य वेदभाष्यम् अभावि चतुर्वेदविषयसूचीरूपं पूर्णम् । ततः वरतरं श्रेष्ठतरं वेदभाष्यमतिविस्तृतं प्रारब्धं तत् अप=अपास्य मध्यमं वेदभाष्यं कुर्वन् ब्रह्म प्राप्त इति योज्यम् ।

३—विक्रमसंवत् १९४० ।

४—विक्रमसंवत् २००६ चैत्रशुक्ला प्रतिपत् ।

ऋग्वेद महाभाष्य के अन्वितार्थप्रदीप

का

आर्यभाषानुवाद

ओ३म् । विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥

हे (सवितः) महर्षि के समस्त साहित्य पर विस्तृत टीकाओं को लिखने की प्रेरणा करने वाले (देव) वेदज्ञान के दाता जगदीश्वर ! आप (विश्वानि) समस्त (दुरितानि) अज्ञान आलस्य आदि मेरे दोषों तथा महर्षि के वेदभाष्यादि व्याख्या कार्य में अन्य विघ्न जो सहायक सामग्री का अभाव आदि हैं उनको (परा सुव) दूर कर दीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) प्रतिभा, महर्षि में स्थिर श्रद्धा, आयु, आरोग्य और सहायक सामग्री की प्राप्ति आदि हैं (तत्) वह सब (नः) हमें (आसुव) प्राप्त कराइए जिससे सहस्रों वर्षों से विलुप्त जो आप का वेदज्ञान था जिसको ऋषिवर ने आपके साक्षात्कार के द्वारा पुनः प्राप्त करके निवद्ध किया उस को तथा अनार्ष ग्रन्थों के प्रचार और प्रभाव से आर्षग्रन्थों का भी जो मिथ्या अर्थ प्रचलित हो रहा था उनका भी सत्य अर्थ महर्षि ने जो प्रकाशित किया उसको वर्तमान टीकाग्रन्थों से व्यामोहित पठक और पाठक जन न समझकर सत्यज्ञान से वञ्चित हो रहे हैं उस को ऋषि के समस्त साहित्य पर विस्तृत व्याख्यान लिखकर प्रकाशित करने में मैं समर्थ होऊं ।

१-२—आदि कवि स्वयंभू भगवान् को नमस्कार करके गुरुजनों, ऋषियों, मुनियों, आचार्यों तथा सब सत्यशास्त्रों के रचयिताओं को स्मरण करके महर्षि स्वामी दयानन्दसरस्वती जी के वेदभाष्य में दिन रात परिश्रम करने वाला मैं आचार्य विश्वश्रवा व्यास उस वेदभाष्य की व्याख्या करने को उद्यत हुआ हूं ।

३-४—महर्षि के वेदभाष्य में प्रत्येक मन्त्र पर नीचे लिखी बातें क्रमशः हैं—
(१) सूक्त की मन्त्र संख्या के साथ उसका ऋषि, (२) मन्त्र का देवता, (३) मन्त्र का छन्द, (४) मन्त्र का षड्ज आदि स्वर, (५) मन्त्रभूमिका अर्थात् प्रारम्भ में मन्त्र में

प्रतिपाद्य विषय का वर्णन संस्कृत में फिर (६) मन्त्रभूमिका का आर्यभाषानुवाद (७) मन्त्रपाठ, (८) पदपाठ, (९) पदार्थ-अर्थात् मन्त्र में आये प्रत्येक पद का मन्त्र के क्रम से सब अर्थों में विस्तृत एक एक पद का अर्थ (१०) अन्वय-अर्थात् अन्वितार्थ। इस अन्वय में केवल मन्त्र के पदों का अन्वय मात्र नहीं है प्रत्युत संगत अर्थ वाक्यार्थ के रूप में लिखा है अत एव इस अन्वय नाम वाले भाष्य में वाक्यार्थ पूर्ति के लिये कुछ शब्दों को जोड़ा भी है और कहीं कहीं पदों का पर्याय भी इस अन्वय में है। इसी अन्वय का आर्यभाषानुवाद में पदार्थ नाम है। (११) भावार्थ। ये दस बातें संस्कृतभाष्य में हैं इसके पश्चाद् आर्यभाषा में (१२) पदार्थ अर्थात् अन्वय का आर्यभाषानुवाद। इस को संस्कृत पदार्थ से मत मिलाओ प्रत्युत अन्वय का अनुवाद समझो अन्यथा दोनों का पदार्थ नाम होने से धोका हो सकता है। इस आर्यभाषा पदार्थ का पहिले ऋषि ने पदार्थान्वयभाषा नाम रखा था। अर्थात् पदों के अर्थों को लेकर अन्वय अर्थात् अन्वितार्थ का आर्यभाषानुवाद। (१३) और सब के अन्त में आर्यभाषा में भावार्थ यह संस्कृत भावार्थ का अनुवाद है। ये १३ बातें प्रत्येक मन्त्र पर ऋषि ने लिखी हैं। इस प्रकार ऋषि का भाष्य-पदार्थ, अन्वितार्थ, भावार्थ तीन रूप में चलता है।

४-८—मैं महर्षि के वेदभाष्य पर चार टीकाएं लिख रहा हूं। पदार्थ की टीका पदार्थप्रदीप, अन्वय की टीका अन्वितार्थ प्रदीप, भावार्थ की टीका भावार्थप्रदीप और ऋषि, देवता, छन्द, स्वर, मन्त्रभूमिका, पदपाठ, आदि की टीका विश्वप्रदीप। ये चार प्रदीप मिलकर ऋषि के वेदभाष्य का महाभाष्य नाम टीका ग्रन्थ लिखा जायेगा जिसमें अन्य भाष्यों की समालोचना भी साथ साथ रहेगी जिससे सत्य अर्थ का प्रकाश हो। यह वर्तमान टीका अन्वितार्थ प्रदीप है।

९—ऋषि के वेदभाष्य में बड़े ही विचित्र गहनस्थल हैं पर इन चारों प्रदीपों से वे सब ठीक ठीक समझे जासकेंगे जैसे गम्भीर से गम्भीर नदी में भी यदि घाट बना दिये जावें तो सब का प्रवेश सुकर हो जाता है।

१०—समुद्र में निहित दीपस्तम्भ (Light House) जैसे मार्गप्रदर्शक होते हैं वैसे ही ये वेदभाष्य प्रदीप विषमस्थलों के स्पष्ट ज्ञान में सहायक होंगे।

११—बुद्धिमान् विद्यायुक्त पर रागद्वेष से शून्य विद्वज्जन उन प्रदीपों को आलोचना पूर्वक देखें क्योंकि ऐसे ही जन उनका परीक्षण कर सकेंगे। सुवर्ण (स्वर्ण और अच्छे वर्ण विन्यास वाले) मन्त्रार्थ के विषय में शुद्धि और अशुद्धि का परिचय ज्ञानरूपी वह्नि में जाना जा सकता है।

१२—महर्षि का वेदभाष्य महासागर है और उसमें तैरने की इच्छा वाला मैं उतना योग्य नहीं। पर समय ही निश्चय करेगा कि मैं डूबा हूं या पार पहुंच सका हूं।

१३—यह वेदवाक्य अत्यन्त प्रसिद्ध है कि "श्रद्धा से सत्य प्राप्त होता है।" मुझे महर्षि के समस्त साहित्य और सम्पूर्ण सिद्धान्तों पर पूरी श्रद्धा है। जिसके अभाव के

कारण मेरे एक दो साथी मार्गभ्रष्ट होगये । मैं उनके समान ऋषि के ग्रन्थों में त्रुटियां समझने वाला नहीं हूं क्योंकि ऐसी धारणा से बुद्धि प्रतिहत हो जाती है और वह बुद्धि प्रतिभाशून्य होकर सत्यार्थ तक नहीं पहुंच पाती। यह मेरी ऋषि में दृढ़ श्रद्धा ही ऋषि के वेदभाष्य रूप समुद्र को तैर कर पार करने में बड़े जहाज का काम दे रही है।

१४—महर्षि स्वामी दयानन्दसरस्वती में, पूर्व समस्त ऋषियों में, वेद में और परमात्मा में जो मेरी दृढ़ आस्था है वह मेरा सहारा है।

१५—मेरे पूज्य पिताजी का नाम प० खोतारामजी, माता का नाम धनवती और मैं इस समय समस्त पृथ्वी लोक के आर्यजगत् के धर्मामात्य पद पर स्थित हूं जिस स्थान का आदर सब सज्जन करते हैं। मैंने साङ्गोपाङ्ग वेद में परिश्रम किया है, अनेक भाषाएं सीखी हैं, काशी से आचार्य पद प्राप्त किया है और वेद के समझने में मेरी बुद्धि स्वाभाविक चलती है, मेरा नाम आचार्य विश्वश्रवाः व्यास इस समय देश देशान्तर में प्रसिद्ध है।

१६—जिन्हें समस्त पाणिनि व्याकरण के ग्रन्थ कण्ठस्थ थे जो पुस्तक हाथ में लेकर कभी नहीं पढ़ाते थे ऐसे व्याकरण की साक्षात् मूर्ति प० हृदयानन्दजी से मैंने पाणिनीय व्याकरणशास्त्र पढ़ा। समस्त शास्त्रों के विचित्र विद्वान् सब ही विषयों के ग्रन्थों पर टीका आदि लिखने वाले और अपने समय के विद्वानों से भी पूजित महामहोपाध्याय प० शिवदत्त दाधिमथ से मैंने पातञ्जल व्याकरण-महाभाष्य का अध्ययन किया। समस्त शास्त्रों के अध्यापन में दक्ष अतिशान्त ब्राह्मणत्व की साक्षात् प्रतिमा महामहोपाध्याय प० परमेश्वरानन्दजी से मैंने वेदों के अन्य अङ्गों का विशेष अध्ययन किया जिनका वरद हस्त अब भी सदा मेरे ऊपर रहता है। कवितार्किक प० नृसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य से मैंने नव्य तथा प्राचीन दर्शन पढ़े।

१७—महाविद्यालय गुरुकुल ज्वालापुर में रहने वाले विद्वन्मणि शास्त्रों के सागर बृहस्पति तुल्य विद्वान् सरलता की साक्षात् मूर्ति छात्रों के परम हितचिन्तक दयालु श्री प० भीमसेन शर्मा आगरा निवासी से निरुक्त शिक्षा आदि शास्त्रों का तथा वैदिक धर्म की शिक्षा का पूर्ण ज्ञान और सिद्धान्तों में निपुणता प्राप्त की।

१८—परम्परा से प्राप्त वेद ज्ञान को मैंने अद्वितीय प्रगल्भवक्ता शास्त्रार्थमहारथ महामहोपाध्याय प० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी से प्राप्त किया और वेदावतार जयपुर राजगुरु विद्यावाचस्पति प० मधुसूदन ओझा से केवल वेद के रहस्य सीखे। पञ्जाब विश्वविद्यालय लाहौर में डा० कुरैशी आदि से जर्मन आदि भाषाएं सीखीं।

१९—पञ्जाब विश्वविद्यालय के ओरियन्टल कालेज लाहौर के प्रिंसिपल ए० सी० वूलनर साहब से अनेक भाषाओं की लिपियां और हस्तलेखों के संपादन की कला जानी।

२०—काशी जयपुर हिमाचलप्रदेश उत्तरप्रदेश पञ्चनद आदि, और देश विदेश के रहने वाले शेष सब ही मेरे गुरुजन वन्दना के योग्य हैं जिनके चरणरज की कृपा से पवित्र होकर सब ज्ञान प्राप्त किया। वे अन्य स्वनामधन्य इस प्रकार हैं—

श्री प० श्यामलाल शर्मा, श्री प० नान्हूराम शर्मा, श्री प० जगन्नाथ शर्मा, श्री प० मुकुन्दशास्त्री खिस्ते, श्री प० हीरानन्द शर्मा, श्री प० जगदीशचन्द्र शर्मा श्री प० रामचन्द्र शर्मा, श्री प० सरयूप्रसाद त्रिपाठी, श्री प० त्रिवेणीदत्त शर्मा प० उदयशंकर भट्टाचार्य आदि सब ही गुरुजन साहित्य व्याकरणतीर्थ आचार्य थे।

२१—महर्षि ने अपने समय में जो प्राचीन हस्तलिखित तथा मुद्रित ग्रन्थ संग्रह किये थे तथा ऋषि के अपने ग्रन्थों के जो हस्तलेख और ऋषि के लिखे पर अभी तक अमुद्रित जो ऋषि के अन्य ग्रन्थ परोपकारिणी सभा अजमेर के संग्रह में हैं उन सब को परोपकारिणी सभा के प्रधान मन्त्री दीवानबहादुर बा० हरविलास सारडा ने जिन्होंने ऋषि के साक्षात् दर्शन किये थे और मेरे साथ पितृवत् व्यवहार करते थे उन्होंने मुझे देखने को दिये। उस संग्रह को बिना देखे ऋषि के ग्रन्थों पर टीका लिखने का काम हो ही नहीं सकता था।

२२—उपर्युक्त विवरण विद्याध्ययन का है पर मेरी जीवनयात्रा इस प्रकार बीती है कि श्री पूज्य पिताजी का स्वर्ग बाल्यावस्था में ही हो गया जब मैं तीन वर्ष का था। माताजी व्यवहारनिपुण थी उन्होंने सांसरिक व्यवहार की अच्छी शिक्षा दी और नानी जिनका नाम दिलसुखी था उन्होंने पालनपोषण किया। अब प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त होकर उपर्युक्त सर्वजनों के आशीर्वाद से महर्षि के सब विरोधियों के मिथ्या पक्षों के खण्डन करने में समर्थ हूं। अब मैं ऋषि के ऋग्वेदभाष्य की चार प्रदीपों द्वारा विस्तृत व्याख्या करता हूं। जो मेरा महर्षिः—

२३—ब्रह्मा से लेकर जैमिनि और व्यास तक ऋषियों को प्रमाण मानता है, जो साक्षात्कृतधर्मा है, अखण्ड ब्रह्मचारी और यति है।

२४—जिस ऋषि ने पहले अपने पूज्य-पिता करसनजी, अपने चाचाजी, श्री कृष्णशास्त्री, प० परमानन्दजी प० रामनिरञ्जनजी तथा स्वामी पूर्णानन्दसरस्वती आदि से विद्याध्ययन किया।

२५—फिर व्यासाश्रम धराली की गुफा आदि पर्वतों के निर्जनस्थानों, बीहड़ जंगलों गुफाओं और प्रपातों में योगी योगानन्द, स्वामी ज्वालानन्दपुरी, स्वामी भवानीगिरि, स्वामी शिवानन्दगिरि आदि से योगसमाधि सीखी

२६—धर्म की पुनः स्थापना करने वाला यह तप और स्वाध्याय से युक्त ब्राह्मण विरजानन्ददण्डी के शिष्य स्वामी दयानन्दसरस्वती नाम से प्रसिद्ध हुए।

२७—जिनको कवि की उत्प्रेक्षा में इस प्रकार कहा जायेगा कि—

(क) दयानन्दसरस्वती पूर्वजन्म में किसी अन्य लोक में थे वहां से इस भूलोक में इस बार जन्म ग्रहण किया क्योंकि ऐसे व्यक्ति पूर्वजन्म में भी अलौकिक विभूति वाले रहे होंगे पर ऐसा व्यक्ति इस लोक में सुना नहीं गया।

(ख) या परमात्मा की अनन्त सृष्टियों से में किसी अन्य सृष्टि से इस जन्म में आये हों।

(ग) ऐसा प्रतीत होता है कि मुक्ति से लौटे जीवात्मा में जो विभूतियां होती हैं वे इन में हैं। ऐसा दिव्य आत्मा वेदोद्धार के कार्य में प्रवृत्त हुआ समझो।

२८—जिस ऋषि ने सब पाषण्डों मतमतान्तरों का खण्डन करके और वेदों पर मिथ्या लगाये आक्षेपों का निराकरण करके वेद को निष्कलङ्क प्रसिद्ध किया और अन्य भी सब शास्त्रों का सत्य अर्थ प्रकाश करके उद्धार किया।

२९—उन ऋषिवर की इच्छा थी कि समस्त भूतल पर आर्यों का साम्राज्य होजावे, वेद का प्रसार सर्वत्र हो और सब संसार के लोग आर्य हो जावें इस उद्देश्य से उन्होंने पृथिवी तल पर प्रचार प्रारम्भ किया।

३०—वह ऋषि संवत् १९३० में योग की पराकाष्ठा को प्राप्त कर जीवन्मुक्त होगये। फिर दश वर्ष के अन्दर सत्यधर्म का प्रचार करते हुए साक्षात्कृतधर्मा हुए हुए उन्होंने वेद का संक्षिप्त भाष्य अर्थात् चतुर्वेद विषयसूची रूप चारों वेदों का पूर्ण बनाया फिर अति विस्तृत वेदभाष्य करते करते बीच में उसको छोड़कर मध्यम श्रेणि का वेदभाष्य जब कर रहे थे तब यजुर्वेद का पूर्ण और ऋग्वेद का ७ मण्डल सूक्त ६१ सूक्त के २रे मन्त्र तक ही वेदभाष्य कर पाये थे कि संवत् १९४० में जब उनके शरीर छूटने का समय आया तब जीवन्मुक्त वह ऋषि ब्रह्म को प्राप्त हुए।

३१-३२—प्रजातन्त्र से शासित स्वतन्त्र भारतवर्ष के उत्तरप्रदेश में वर्तमान बरेली नाम नगर में २००६ वैक्रम संवत्सर के प्रथम दिन चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को यह अन्वितार्थ-प्रदीप नाम टीका महर्षि के ऋग्वेदभाष्य पर लिखना प्रारम्भ किया।

महर्षिकृतवेदभाष्यस्येतिवृत्तम्

महर्षि श्री दयानन्दसरस्वतीस्वामिना वेदभाष्यकार्यं १९३१ विक्रमसंवत्सरतः पूर्वमेव प्रारब्धमासीत्—

१—तस्मिन् काले चतुर्वेदविषयसूच्यात्मकं चतुर्वेदवर्णितविषयाणामनेकसहस्रवर्षान-न्तरमार्षदर्शनस्वरूपं महर्षेरेव प्रथमं दर्शनं जातम्। एषा चतुर्वेदविषयसूची परोपकारिणीसभासंग्रहेऽमुद्रितैव शोभते। मया महता प्रयत्नेन प्रतिच्छायलिपिं Photo-Stat कारयित्वा सुरक्षिता।[1] परमस्या मुखपृष्ठस्य प्रतिच्छायलिपि-र्नाकारि विस्मृत्याऽधिकारवर्गैः।

२—तदा धर्मं साक्षात्कृत्य १९३१ विक्रमसंवत्सर एव ऋग्वेदप्रथमसूक्तस्य संस्कृत-भाष्यम् आर्यभाषा—गुजराती मराठी भाषानुवादसहितमादर्शाङ्कतया प्रकाश-मनयद् ऋषिः।

३—अथ ऋग्वेदस्यातिविस्तृतं वेदभाष्यं महर्षिकृतं १९३३ विक्रमसंवत्सरे दृष्टि-पथमवतरति। तच्च बह्वीषु ऋक्षु वर्तते। इदमपि विस्तृतं महर्षेर्ऋग्वेदभाष्यं परोपकारिणीसभासंग्रहेऽमुद्रितमेव विराजते।

४—तदा १९३३ विक्रमसंवत्सरे पुनर्द्वितीयो विस्तृतवेदभाष्यस्यादर्शाङ्को संस्कृता-र्यभाषाभ्यां समन्वितो महर्षिणा प्रकाशितः। तस्मिन्नादर्शाङ्के ऋग्वेदप्रथमसूक्त-भाष्यं संस्कृतार्यभाषासमन्वितं द्वितीयसूक्तस्य चापूर्णं संस्कृतभाष्यं वर्तते तत्रैव प्रथमोऽङ्कः समाप्तिमगमत्। द्वितीयेऽङ्के शिष्टं प्रकाश्यमासीत्। द्वितीयसूक्तस्यापूर्णेन संस्कृतभाष्येण महर्षेः विस्तृतवेदभाष्यस्यैव प्रकाशनप्रकामना प्रतीयते।

५—परमस्य भाष्यस्यातिविस्तरमभिलक्ष्य न्यस्तस्तच्चिन्तया चतुर्वेदविषयसूचीमुखपृष्ठे महर्षेः स्वहस्तः स्वहृदयवेगमवष्टभ्य वाचितव्यस्तद्भक्तैः। तथाहि—

१—अस्यां चतुर्वेदविषयसूच्यां चतुर्णां वेदानां सर्वेषां मन्त्राणां प्रतिमन्त्रं विषया निर्दिष्टाः। अथ चोपलब्धवेदशाखाब्राह्मणानामपि विषयनिर्देशमकार्षीत् तत्र परमर्षिः। पारोवर्यविदां वेदभाष्यकर्तॄणां महदुपकारिणी चतुर्वेदविषयसूची। तदनाश्रयेण कृतानामाधुनिक-वेदभाष्याणां लेशतोऽपि न प्रामाणिकता।

एकैकस्य शतादुपरि कालः ॥

शतावध्यागन्तुको मृत्युः ॥

नाकाले म्रियते जन्तुः ॥

(चतुर्वेदविषयसूचीमुखपृष्ठम्)

एषु स्मर्तव्याक्षरेष्वयमभिप्राय ऋषेः प्रतिभाति—

क—एकैकस्य वेदस्यैतादृशविस्तृतवेदभाष्यकरणे प्रतिवेदं शतादुपरिकालोऽपेक्षितः । एवं शतचतुष्टयवर्षेण चतुर्वेदभाष्यसमाप्तिः स्यात् ।

ख—ममायुः शतादपि न्यूनमिति मयाऽऽर्षदृष्ट्या विज्ञातम् । अतोऽतिविस्तृतवेदभाष्य-कार्यं परित्यज्यानतिविस्तृतं भाष्यं मया करणीयमिति ऋषेर्विचारः प्रादरभूत् ।

ननु नैष्ठिकब्रह्मचारिणः कथमल्पायुः ? उच्यते—

ग—नाकाले म्रियते जन्तुरिति ।

६—ततः १९३४ विक्रमसम्वत्सरेऽनतिविस्तृतं वेदभाष्यमारब्धं जगद्धितैषिणा महर्षिणा । तद् ऋग्वेदस्य संस्कृतार्यभाषासमन्वितं सप्तममण्डलस्यैकषष्ठि-सूक्तस्य द्वितीयमन्त्रपर्यन्तं मुद्रितं लभ्यते यन्मयाऽतिविस्तृतवेदभाष्यसाहाय्येन व्याख्यास्यते । यजुर्वेदस्य चेदं भाष्यं सम्पूर्णं मुद्रितं तदपि यथावसरं व्याख्यास्यत एव ।

७—संस्कृतभाष्यं तस्यार्यभाषानुवादश्चेत्युभयमपि महर्षिकृतमेव । तथा चोक्तं महर्षिणा—

संस्कृतप्राकृताभ्यां यद् भाषाभ्यामन्वितं शुभम् ।
मन्त्रार्थवर्णनं चात्र क्रियते कामधुङ् मया ॥

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायामुभयोर्मयेति पदेन महर्षिकृतत्वश्रवणात् ।

८—आर्षं चेदं भाष्यम् । तथाहि—

पुनस्तत्कथनेनानृषिकृतग्रन्थवत् पिष्टपेषणापत्तेः ।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

इति ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायामेव प्रतिज्ञाविषये भाष्यकर्त्रा स्वात्मनः ऋषित्व-प्रतिज्ञानात् ।

इति वेदभाष्येतिवृत्तम्

अथ महर्षिवेदभाष्यं व्याख्यास्यते—

आर्यभाषा

महर्षि के वेदभाष्य का ऐतिहासिक निरीक्षण

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने वेदभाष्य का कार्य विक्रम संवत् १६३१ से पूर्व ही आरम्भ कर दिया था।

१—विक्रम संवत् १६३१ से पूर्व ही वेदभाष्य को करने के उद्देश्य से सर्व प्रथम ऋषि ने "चतुर्वेद विषय सूची" नाम ग्रन्थ का निर्माण किया। जो वेद का यथार्थ अर्थ सहस्रों वर्षों से लुप्त हो गया था वह वेदार्थ जैमिनि और व्यास के उपरान्त इस ऋषि ने ही समाधि द्वारा प्रथम वार स्वयं साक्षात्कार किया। वेदभाष्य के कार्य में यही एक कठिन कार्य था कि किस मन्त्रादि में किस विषय का वर्णन है। महर्षि की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा जो अजमेर में है वहाँ परोपकारिणी सभा के प्रधानमन्त्री स्वर्गीय दीवानबहादुर हरविलासजी शारदा के अनुग्रह से ऋषि के सब सामान को पूर्ण देखकर व्यवस्थित करने का सौभाग्य बहुत काल प्राप्त हुआ उस समय यह चतुर्वेदविषयसूची मेरी दृष्टि में पड़ी। इस अमूल्य ग्रन्थ के पत्र चिपक गये ये हस्तलिखित ही पड़ा था कठिनता से उस ग्रन्थ के प्रत्येक पत्र को पृथक् पृथक् करके अधिकारिवर्ग से आग्रह करके उस ग्रन्थ का फोटो कराकर सुरक्षित करके रखवा दिया। आश्चर्य है कि ऋषि के उपरान्त सामवेद अथर्ववेद और ऋषि के छुटे हुए ऋग्वेद के भाग पर भाष्य करने वाले विद्वानों ने उसका उपयोग नहीं किया। संभवतः उनको इसका पता नहीं था। चतुर्वेदविषयसूची के मुखपृष्ठ का फोटो कराना अधिकारिवर्ग भूल गये। उनका ध्यान आकर्षित कर दिया है। बड़े महत्त्व का वह मुखपृष्ठ है जिसका वर्णन आगे है।

२—चारों वेदों के अर्थों का इस प्रकार साक्षात्कार करके विक्रम संवत् १६३१ में ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का संस्कृत भाष्य जिसमें आर्य भाषा गुजराती मराठी अनुवाद भी था ऋषि ने आदर्शाङ्क के रूप में छापा।

अब स्वामीजी प्रधान रूप से वेदभाष्य के कार्य में लग गए। चारों वेदों के विस्तृत वेदभाष्य की तैयारी और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका जैसे महान् ग्रन्थ की रचना के उद्योग में (जिस से सारा संसार चकित हो गया) बहुत समय ऋषि को लगाना पड़ा।

१—चतुर्वेदविषयसूची में चारों वेदों के सब मन्त्रों पर लेख है कि किस मन्त्र में किस विषय का वर्णन है यहां तक कि वेदों की उपलब्ध शाखाओं और ब्राह्मणग्रन्थों तक के विषयों का उल्लेख इस चतुर्वेदविषयसूची में है।

३—संवत् १९३३ में नियमित रूप से विस्तृत वेदभाष्य और भूमिका का लेखन कार्य ऋषि ने प्रारम्भ कर दिया। यह विस्तृत वेदभाष्य ऋग्वेद के अनेक सूक्तों तक चला गया है। यह भी अमुद्रित ही परोपकारिणी सभा के संग्रह में अति सुरक्षित पड़ा ही है अभी छपा नहीं है।

४—उस समय विक्रम संवत् १९३३ में अपने किये विस्तृत वेदभाष्य का एक दूसरा आदर्शाङ्क महर्षि ने प्रकाशित किया जिसमें ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का संस्कृत भाष्य और आर्यभाषानुवाद तथा द्वितीय सूक्त के प्रथम मन्त्र का कुछ संस्कृत भाष्य छपा था। जिससे प्रतीत होता है कि इसी प्रकार अङ्क अङ्क करके सब विस्तृत भाष्य प्रकाशित करने का ऋषि का विचार था। अन्यथा द्वितीय सूक्त के प्रथम मन्त्र का अपूर्ण संस्कृत भाष्य प्रकाशित करने का कुछ भी प्रयोजन नहीं हो सकता। वह दूसरे अङ्क में पूरा होना था। इसी प्रकार आगे चलता रहता।

५—पुनः ऋषि का विचार पैदा हुआ कि ऐसा विस्तृत वेदभाष्य यदि मैं चारों वेदों पर करूंगा तो चारों वेदों के भाष्य करने में चार सौ वर्ष लगेंगे। नैष्ठिक ब्रह्मचारी की चार सौ वर्ष आयु होती है। मनु के लेख के अनुसार उस कल्प में चार सौ वर्ष की आयु होती थी। परन्तु जब उन्हें समाधि द्वारा यह ज्ञात हो गया कि मैं अपने सौ वर्ष के अन्दर ही इस शरीर को छोड़कर परमपद को प्राप्त हो जाऊंगा यह जानकर ऋषि ने विस्तृत वेदभाष्य का कार्य छोड़ दिया। इस विषय में चतुर्वेद-विषयसूची के मुखपृष्ठ पर ऋषि के अपने हाथ से अङ्कित कुछ अक्षर प्रमाण हैं। जो इस प्रकार वहाँ लिखे मेरी दृष्टि में ही पहिली बार पड़े—

एकैकस्य शतादुपरि कालः ॥
शतावध्यागन्तुको मृत्युः ॥
नाकाले म्रियते जन्तुः ॥

इन पङ्क्तियों का अर्थ ऐसा प्रतीत होता है कि—

क—इतने अति विस्तृत वेदभाष्य करने में एक एक वेद पर एक एक सौ वर्ष लगेगा अर्थात् ऐसा वेदभाष्य करने में चार सौ वर्ष का समय अपेक्षित है।

ख—मेरी आयु सौ वर्ष से भी कम है ऐसा मैंने आर्षदृष्टि से जान लिया। क्योंकि कर्म-बन्ध पूर्ण हो गया है।

अतः अति विस्तृत वेदभाष्य का कार्य छोड़कर कम विस्तार वाला वेद-भाष्य मुझे करना चाहिए ऐसा ऋषि का विचार पैदा हुआ होगा।

ग—प्रश्न-नैष्ठिक ब्रह्मचारी की सौ वर्ष से आयु कम क्यों होगी?

उत्तर-शरीर छोड़ने का समय निश्चित है। कर्म फल का अभाव भी हेतु है।

६—तब तृतीय प्रयत्न के रूप में ऋषि ने विक्रम संवत् १९३४ में संसार के कल्याण के लिए जो अत्यधिक विस्तृत न हो ऐसा वेदभाष्य करना प्रारम्भ किया यह वेदभाष्य यजुर्वेद का संस्कृत और आर्यभाषा में ऋषि ने पूरा किया। पर ऋग्वेद का भाष्य

मण्डल ७, सूक्त ६१, मन्त्र २ तक ही है जो मुद्रित उपलब्ध हैं। ये दोनों वेदों के भाष्य साथ साथ छपने प्रारम्भ हुए। पर ऋषि के जीवन में सब नहीं छप सका। ऋग्वेद भाष्य का छपना मासिक अङ्क के रूप में प्रारम्भ हुआ। पहिला अङ्क जब महर्षि उत्तरप्रदेश में थे संवत् १९३५ श्रावण मास में प्रकाशित हुआ।

ऋषि के जीवनकाल में केवल ५१ अङ्क ऋग्वेद के छप सके जिस में ऋग्वेद १।८६।५ मन्त्र तक भाष्य है। ५०-५१ अङ्क के छपने का समय संवत् १९४० आषाढ़ कृष्ण पक्ष है। इसके अनन्तर संवत् १९४० चैत्र कृष्ण पक्ष को ५२-५३ वां अङ्क ऋग्वेदभाष्य का छपा जिसमें श्री स्वामीजी महाराज के मोक्षधाम पधारने का दुःखद समाचार छपा। ९ मास व्यवस्था में लगे होंगे।

महर्षि के पश्चात् यह ऋग्वेद का भाष्य अङ्क अङ्क करके विक्रम संवत् १९५६ आषाढ़ कृष्ण पञ्चमी तक छपता रहा। इस प्रकार इसके छपने में लगभग २२ वर्ष लगे। प्रारम्भ के १३ अङ्क निर्णय सागर प्रेस बम्बई में छपे थे फिर वैदिक यन्त्रालय में मुद्रण हुआ। उस समय वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में था। महर्षि के इस मुद्रित ऋग्वेदभाष्य का व्याख्यान विस्तृत वेदभाष्य की सहायता से मैं कर रहा हूँ। यजुर्वेदभाष्य का भी व्याख्यान यथावसर करूंगा।

७—ऋषि के पश्चात् जो वेदभाष्य के अङ्क छपने प्रारम्भ हुए उनमें भी बहुत अङ्कों के बाद मुखपृष्ठ पर एक विचित्र पङ्क्ति छपनी प्रारम्भ हुई जिससे यह मिथ्या भ्रान्ति होती है कि वेदभाष्य का आर्यभाषानुवाद अन्यों का है। यदि यह बात सत्य होती तो जो अङ्क ऋषि के जीवन काल में छपे थे उन अङ्कों के ऊपर यह पङ्क्ति ऋषिवर स्वयं छापते। यह देख कर और भी आश्चर्य है कि वेदभाष्य का दूसरा संस्करण जो संवत् १९७१ में वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपा उसमें प्रारम्भ से ही पण्डितों ने इस पङ्क्ति को छापना प्रारम्भ कर दिया जब अधिकारिवर्ग का ध्यान गया तब इसका छापना बन्द कर दिया गया।

वस्तुतस्तु ऋषि के सब ग्रन्थों और वेदभाष्यों में संस्कृत और आर्यभाषा दोनों ऋषि की ही हैं ऐसा ही महर्षि ने अपने जीवनकाल में भी वेद भाष्य के मुखपृष्ठ पर तथा वेदभाष्य के अन्दर भी विशेष प्रकरणों की समाप्ति पर स्वयं छापा कि मुझ दयानन्द सरस्वती स्वामी कृत संस्कृत और आर्यभाषा से समन्वित यह वेदभाष्य है। ऐसा ही ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वर्णन मिलता है कि—

सो यह वेदभाष्य दो भाषाओं में किया जाता है एक संस्कृत और दूसरी प्राकृत इन दोनों भाषाओं में वेदमन्त्रों के अर्थ का वर्णन मैं करता हूं

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ २)

८—यह वेदभाष्य आर्ष है। इस विषय में महर्षि ने स्वयं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रतिज्ञाविषय में प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा है जिसका भाव यह है कि—

ऋषि लोग किसी अन्य की लिखी बात को लिख कर पिष्टपेषण नहीं करते। जैसे जो विषय एक दर्शन में वर्णित हो चुका दूसरा दर्शनकार तदतिरिक्त का ही वर्णन करता है। न्याय सांख्य वेदान्त आदि सब दर्शनों में पृथक् पृथक् ही विषयों का वर्णन है पिष्टपेषण नहीं। स्वामीजी महाराज ने यह जानकर कि वेद-मन्त्रों का कर्मकाण्डपरक अर्थ दूसरे ऋषि याज्ञवल्क्यादि कर चुके हैं अतः ऋषि ने वेदमन्त्रों. का कर्मकाण्डपरक अर्थ विशेष रूप से नहीं किया। ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में प्रश्नोत्तर इस प्रकार है कि—हे ऋषिवर तुम अपने वेदभाष्य में कर्म-काण्डपरक मन्त्रों के अर्थ क्यों नहीं करते। इस प्रश्न के उत्तर में ऋषि लिखते हैं कि यदि मैं भी मन्त्रों का कर्मकाण्डपरक अर्थ करूं तो मेरा यह वेदभाष्य ऋषि कृत वेदभाष्य नहीं कहा सकता क्योंकि कर्मकाण्डपरक मन्त्रों का अर्थ अन्य ऋषि याज्ञवल्क्य आदि कर चुके हैं। ऋषि लोग पिष्टपेषण नहीं करते। ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका में ऋषि के अक्षर इस प्रकार हैं--

"पुनस्तत्कथनेनानृषिकृतग्रन्थवत् पिष्टपेषणापत्तेः"

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका प्रतिज्ञाविषय)

अब आगे महर्षि के वेदभाष्य की व्याख्या की जायगी।

प्रकृतमृग्वेदभाष्यमारभमाण ऋषिः प्रस्तौति—

(महर्षिभाष्यम्)

ऋग्वेदः

"अथर्ग्वेदभाष्यारम्भः"

(ऋ० भा० १ । १ । १ ॥)

अथ शब्दोऽत्र मङ्गलार्थ आनन्तर्यार्थश्च प्रयुज्यते नाधिकारार्थः । अधिकार आधिक्येन प्राधान्येन प्रारम्भणम्, तस्य तु "अथर्ग्वेदभाष्यारम्भः" इत्यारम्भ-पदेनैवोक्तत्वात् । अथ शब्दस्य मङ्गलार्थत्वेऽर्थवादः श्रूयते—

ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥

आनन्तर्यं च—अथ चतुर्वेदविषयसूचीविस्तृतवेदभाष्यप्रकारप्रदर्शन ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिकानिर्माणानन्तरम् । भूमिकानिर्माणकार्यं बरेलीनगरे १९३३ विक्रमसंवत्सरे मार्गशीर्षपूर्णिमायां महर्षिणा समापितम् । ऋग्वेदभाष्यस्यारम्भः क्रियत इति शेषः ।

(महर्षिभाष्यम्)

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद् भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ ॥ ऋ० ५ । ८२ । ५ ॥

(ऋ० भा० १ । १ । १ ॥)

भाष्यारम्भेऽतिप्रियामृचमृषिः स्मरति—तस्याः प्रकरणगतं व्याख्यानं महर्षि[1]-संमतं क्रियते—

हे (देव) सूर्यादिसकलजगद्विद्याप्रकाशक ! हे (सवितः) सकलजगदु-त्पादक ! (नः) अस्माकम् (विश्वानि) सर्वाणि (दुरितानि) अस्मिन् वेदभाष्यकरणा-नुष्ठाने ये दुष्टा विघ्नास्तान् (परासुव) प्राप्तेःपूर्वमेव दूरे गमय (यद्) शरीरबुद्धिसहाय-कौशलसत्यविद्याप्रकाशादि (भद्रम्) (तत्) (नः) अस्मभ्यम् (आसुव) प्रापय ।

भाष्यारम्भे महर्षिकृतं मङ्गलम्—

(महर्षिभाष्यम्)

विद्यानन्दं समवति चतुर्वेदसंस्तावना या,
संपूर्येशं निगमनिलयं संप्रणम्याथ कुर्वे ।
वेदत्र्यङ्के विधुयुतसरे मार्गशुक्लेऽङ्गभौमे,
ऋग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम् ॥

अस्यायमर्थः—

(ऋ० भा० १ । १ । १ ॥)

१—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां व्याख्यातम् ।

(या) (चतुर्वेदसस्तावना) संस्ताव्यते परिचाय्यतेऽनयेति संस्तावना परिचयकारिका भूमिकेत्यर्थः । **"संस्तवः स्यात् परिचयः"** इति कोषकाराः। चतुर्णां वेदानां संस्तावना चतुर्वेदसंस्तावना ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका । चतुःशब्देन वेदानां त्रित्वनिरासः । (विद्यानन्दम्) विद्याया ज्ञानविज्ञानात्मकस्य आनन्दं ब्रह्मानन्दसहोदरं हर्षं (समवति) नैरन्तर्येण ददाति । अव धातोः पञ्चविंशतिरर्था धातुपाठेषु द्रष्टव्याः । तथा हि-**"अव रक्षण-गति-कान्ति-प्रीति-तृप्ति-अवगम-प्रवेश-श्रवण-स्वाम्य-सामर्थ्य-याचन-क्रिया-इच्छा-दीप्ति-अवाप्ति-आलिङ्गन-हिंसादन-भाग-वृद्धि-भाव-धृति-स्तुति-दहनेष्विति"**। हिंसादान इत्यत्र हिंसा आदानमिति हिंसा दानमिति वा विगृह्णन्ति । तामिति शेषः (संपूर्य) प्रकृष्टतया औचित्येन च पूर्णां कृत्वा । **"समुपसर्गः संयोग-ऐक्य-विप्रयोग-प्रभव-सत्य-समक्ष-समन्ततोभाव-प्रेक्षण-विभूषण-आभिमुख्य- श्लेष-कार्य-सिद्धि-क्रोध-स्वीकरण-प्रकृष्ट-नैरन्तर्य-औचित्य-समुच्चयेषु द्रष्टव्यः"** ।

यत्तदोर्नित्यसम्बन्धाद् 'या' इत्यनेन 'ताम्' इत्याक्षिप्यते । न च **"प्रागुपात्तस्तु यच्छब्दस्तच्छब्दोपादानं विना साकाङ्क्षः"** ? इत्यालंकारिकमतेन तामिति न्यूनपदत्वेन साकाङ्क्षतादोषापत्तिरिति वाच्यम्, पूर्ववाक्ये विरम्योत्तरवाक्यस्य दीर्घप्रयत्नेनोच्चार्यमाणे नैष दोषो यथा—**"तद्भुक्त्रं यदि, मुद्रिता शशिकथा"** अत्र पूर्ववाक्योपात्तोऽपि यदि शब्द उत्तरवाक्ये तर्हिशब्दमाक्षिपत्येव । छन्दस्यपि दृश्यते—

यत्र ग्रावा पृथुबुंध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
उलूखलसुतानामवेद्विंन्द्र जल्गुलः ॥

ऋ० १ । २८ । १॥

यत्र ग्रावा······भवति तत्र हे इन्द्र······इत्यादि वाक्यार्थः । पूर्वोपात्तो यत्रशब्द उत्तरवाक्ये तत्रशब्दमाक्षिपति । तथैव महर्षिभाष्यम् ।

(निगमनिलयम्) निगमानां वेदानां निलयमाश्रयस्थानम् । तथा च मन्त्रवर्णाः **"यस्मादृचो अपातक्षन्०"** इत्यादि । (ईशम्) जगदीश्वरम् (संप्रणम्य) सर्वात्मना सादरं नत्वा । प्रोपसर्गः पूजाद्योतकः । **"प्र आदिकर्म-**

१—अथर्व १० । ७ । २० ॥

उदीर्ण-भृश-ऐश्वर्य-संभव-वियोग-नियोग-तृप्ति शुद्धि-इच्छा-शक्ति-शान्ति-पूजा-अग्र-दर्शन-सर्वतोभाव-प्राथम्य-ख्याति-व्यवहारेषु—द्रष्टव्यः"

(अथ) अथ शब्दोऽत्र मङ्गलानन्तरारम्भार्थेषु वर्तते। ग्रन्थारम्भे मङ्गलं वैदिकानां प्रसिद्धम्। आनन्तर्यं च ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकानिर्माणानन्तरमिति बोध्यम्। आरम्भश्च भाष्यारम्भ इति। यद्वा विस्तृतं वेदभाष्यमुपेक्ष्य समापनेच्छया पुनर्द्वितीयप्रकारं वेदभाष्यमहं कर्तुं प्रवृत्त इति वाऽथ शब्देन द्योत्यते। (वेदत्र्यङ्के) वेदाश्चतुःसंख्या त्रयस्त्रिसंख्या, अङ्का नवसंख्या यस्मिंस्तस्मिन् वेदत्र्यङ्के। (विधुयुतसरे) विधुना चन्द्रेणैकसंख्यया युतो युक्तः सरः संवत्सरस्तस्मिन् "**अङ्कानां वामतो गतिः**" इति न्यायेन १९३४ वैक्रमसंवत्सर इत्यर्थः। पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे "**अष्टौ वसवः**" पिङ्गल १।१५॥ इत्यत्र लौकिकप्रसिद्धिमनुसृत्य वस्वादिशब्दैरष्टादिसंख्या परिभाषिता। प्रसिद्धा चेयं सरणिर्ज्यौतिषशास्त्रे।

"**नामैकदेशग्रहणे नाममात्रग्रहणम्**" इति सरशब्दः संवत्सरवाचकः। यथोक्तं शब्दानुशासनशास्त्रे—

अथवा दृश्यन्ते हि वाक्येषु वाक्यैकदेशान् प्रयुञ्जानाः पदेषु च पदैकदेशान्। वाक्ये तावद् वाक्यैकदेशान्। प्रविश पिण्डीम्। प्रविश तर्पणम्। पदेषु पदैकदेशान्। देवदत्तोः दत्तः, सत्यभामा भामा।

(महाभाष्य १।१।४५। पृष्ठ १११)

अस्यायमर्थः—प्रविश गृहमिति वक्तव्ये 'प्रविश' इत्येवोच्यते। पिण्डीं भक्षयेति वक्तव्ये 'पिण्डीम्' इत्येवोच्यते। प्रविश गङ्गायामिति वक्तव्ये 'प्रविश' इत्येवोच्यते। तर्पणं कुरु इति वक्तव्ये 'तर्पणम्' इत्येवोच्यते। देवदत्त इति वक्तव्ये 'दत्तः' इत्येवोच्यते। सत्यभामेति वक्तव्ये 'भामा' इत्येवोच्यते

तथैवात्र वत्सर इति वक्तव्ये 'सर' इत्येवोक्तं महर्षिणा।

ननु—

सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणं न प्रयुज्यते।

(महाभाष्य २।१।१॥ पृष्ठ ३६१)

इत्यनुशासनात् कथं वेदत्र्यङ्के इति विशिष्टस्य सरशब्दस्य विधुयुतशब्देन कर्मधारयः। वृत्तस्य वा तस्य कथं विशेषणयोगः। 'विधुयुति सरे' इति पाठः साधीयान् स्यात्। युत् इति क्विबन्तो निर्देशः। उच्यते—सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्

समासः। यथा देवदत्तस्य गुरुकुलम्, देवदत्तस्य दासभार्या। समुदायापेक्षया विशेषणम्।

समाहारद्वन्दो वा। वेदानां त्रयाणाम् अङ्गानां समाहारो वेदत्र्यङ्कं तस्मिन् वेदत्र्यङ्के सति विधुयुतसरे इति योज्यम्।

यत्तु ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां महर्षिलिखितं संवत्सरमाक्षिपन् भूमिकाभासकार आह—

"कालरामाङ्कचन्द्रमितेऽब्दे इति वक्तव्ये कालादिभिरेव केवलैः समुद्युङ्क्ते विबोधयितुं संवत्सरमानम् विचित्रेयं मस्करिणोऽस्य वचोभङ्गिः" इति।

तदसाम्प्रतम्। ज्यौतिषशास्त्रे छन्दःशास्त्रे च विनापि मितशब्दं समुद्रादिशब्दैरेव केवलैः संख्यायाः परिभाषितत्वात् तथाहि—

शालिनी म्तौ तगौ ग् समुद्र ऋषयः

(पिङ्गल ६। २५)

अस्यायमर्थः—यस्य वृत्तस्य पादे मगण तगणौ तगणः द्वौ च गुरू तद् वृत्तं शालिनी नाम यत्र च चतुर्भिः सप्तभिश्च यतिः।

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः।
कुजार्कि गुरु शीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम्॥

(सूर्यसिद्धान्त १। २९॥)

अस्यायमर्थः—(युगे) एकस्मिन् महायुगे (सूर्य+ज्ञ+शुक्राणाम्) सूर्यबुधभृगूणां (ख चतुष्क रदर्णवाः) अङ्कानां वामतो गतिरिति न्यायेन ४,३२,००००० भगणा भवन्ति। तावन्त एव भगणाः (पूर्वयायिनां) पूर्वगामिनां (कुज+अर्कि+गुरू-शीघ्राणाम्) मंगल+शनि+बृहस्पतीना शीघ्रोच्चानां भगणाः द्वादशराशिभोगात्मका भवन्ति। द्वादशराशिभोगात्मकस्य कालस्य भगणसंज्ञा।

उभयत्र केवलैरेव समुद्र ऋपि ख रद अर्णव शब्दैः संख्या परिभाषिता। न तु खचतुष्करदार्णवमिता भगणा भवन्तीत्युक्तम्[1]।

(मार्गशुक्ले) मार्गो मार्गशीर्षः। पूर्ववत् नामैकदेशग्रहणे नाममात्रग्रहणम्। मृगशीर्षेण नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी मार्गशीर्षी साऽस्मिन् मासे भवति स मार्गशीर्षो मासः। तत्सम्बद्धः शुक्लः शुक्लपक्षस्तस्मिन् मार्गशुक्ले अग्रहायणमासस्य शुक्लपक्ष इति। (अङ्गभौमे) अङ्गानि षट्, भूमेरपत्यं भौमो मङ्गलः। शिवादित्वादण्।

१—उभयथापि प्रयोगा दृश्यन्ते तथाहि—

"तर्काम्बराङ्कप्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः। वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्॥"

९०६ शकाब्द इत्यर्थः। इत्युदयनः।

न्यायसूचीनिबन्धोऽसावकारि सुधियां मुदे। श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वस्वङ्कवसुवत्सरे॥

८९८ विक्रमाब्द इत्यर्थः। इति वाचस्पतिमिश्रः।

अङ्गोपलक्षिते भौमे षष्ठतिथौ मङ्गलवासर इति । वेदाङ्गानि षड् भवन्तीति अङ्गशब्दः षट् पर्यायः । (अखिलगुणगुणिज्ञानदातुः) न खिलं प्रतिहतं विद्यते यस्मिन् सोऽखिल[1]ः सर्वपर्यायः । अखिलानां सर्वेषां पदार्थस्थानां गुणानां धर्माणाम् गुणिनां पदार्थानां च ज्ञानदातुः जगति कियन्तः पदार्थाः के के च तेषां विशिष्टगुणा इति ज्ञानप्रदस्य (हि) हि शब्दोऽत्रावधारणार्थः । अयमृग्वेदो गुणगुणिज्ञानं निश्चिततया ददातीति नात्र विचारणा कार्या । **"हि हेत्वपदेश-अनुपृष्ट-असूया-अवधारण-पादपूरण-विस्मयेषु-द्रष्टव्यः"** ।

(ऋग्वेदस्य) (भाष्यम्) भाष्यते विवृततया वर्ण्यते इति भाष्यं व्याख्यानम् (कुर्वे) अहं दयानन्दसरस्वती आरभे । **"वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा"** शब्दानु० ३ । ३ । १३१ ॥ इति वर्तमानसमीपे भविष्यति लट् । भाष्यं प्रारप्स्य इत्यर्थः ।

मन्दाक्रान्ता वृत्तम् । तल्लक्षणम्—

"मन्दाक्रान्ता म्भौ न्तौ तगौ ग् समुद्रर्तुस्वराः"

(पिङ्गल ७ । १६ ॥)

अस्यायमर्थः—यस्मिन् छन्दसि प्रतिपादं मगण भगण नगण तगण तगणाः द्वौ चान्ते गुरू यतिश्च समुद्र ऋतु स्वर लक्षितेषु चतुर्षु षट्सु सप्तसु यत्र विद्यते तद् वृत्तं मन्दाक्रान्ता नाम ।

महर्षेर्मङ्गलश्लोको । व्याख्यातः ।

साङ्गोपाङ्गवेदाध्ययनं प्रतिजानीत ऋषिः—

(महर्षिभाष्यम्)

"ऋग्भिः स्तुवन्ति" इत्युक्तत्वाद् विद्वांस उक्तपूर्वं वेदार्थज्ञान-साहित्यपठनपुरःसरम् ऋग्वेदमधीत्य तत्रस्थैर्मन्त्रैरीश्वरमारभ्य भूमिपर्यन्तानां पदार्थानां गुणान् यथावद् विदित्वा, एते कार्येषूपकृतये मतिं जनयन्ति"

(ऋ० भा० १ । १ । १ ॥)

(ऋग्भिः) ऋग्वेदमन्त्रैः (स्तुवन्ति) पदार्थानां गुणान् वर्णयन्ति (इत्युक्तत्वात्) इति प्रमाणात् (वेदार्थज्ञानसाहित्यपठनपुरःसरम्) वेदार्थज्ञानस्य सहायभूतं यदङ्गोपाङ्गादि रूपं साहित्यं तस्य पठनम्—अध्ययनं पुरःसरम्—

१—न खिलमवशिष्टं यस्य सोऽखिलः शेषशून्यः ।

२—ताण्ड्यब्रा० ४ । ६ । ४ ॥ तैत्तिरीयब्रा० २ । २ । ६ । २ ॥

पूर्ववर्ति यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा। अनेन 'बिभेत्यल्पश्रुताद् **वेदो मामयं प्रहरिष्यति**" इत्यादि मन्त्रककण्टकरूणो वारितः। साङ्गोपाङ्गवेदाध्ययनपूर्वकम्। (उक्तपूर्वम्) अखिलगुणगुणिज्ञानदातारम् (ऋग्वेदम्) (अधीत्य) पठित्वा (तत्रस्थैः मन्त्रैः भूमिमारभ्येश्वरपर्यन्तानां पदार्थानां गुणान् यथावद् विदित्वा) (एते) ईदृशा विद्वांसः (कार्येषु) संसारस्थजनकृत्येषु (मतिं जनयन्ति) स्वज्ञानं प्रयुञ्जते।

अत्र केचिदाहुः 'ऋग्भिः शंसन्ति' इति युक्तः पाठः स्यात्। ऋग्भिः शंसनं क्रियते सामभिः स्तुवन्तीति। 'ऋग्भिः स्तुवन्ति' इति पाठस्याभावाच्च। एवं महर्षिमाक्षिपन्तो मीमांसकास्ताण्ड्यब्राह्मणादिषु 'ऋग्भिः स्तुवन्ति' इति पाठं दृष्ट्वा श्रद्दधतु पारोवर्यविदि भूयोविद्ये महर्षिवर्ये परित्यजन्तु च ऋषिद्रोहबुद्धिमिति।

ऋग्वेदलक्षणमाह ऋषिः—

(महर्षिभाष्यम्)

"ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थानां गुणकर्मस्वभावाननया सा ऋक् ऋक् चासौ वेदश्च ऋग्वेदः।"

(ऋ० भा० १।१।१॥)

"ऋच स्तुतौ" तुदादिः। तस्मात् (संपदादिभ्यः क्विप्) महाभाष्य ३।३।१०८॥ इति भाष्यवार्तिकात् क्विप्। अयं क्विप् भावेऽकर्तरि च कारके इष्यते।

वेदः—वेदशब्दस्य व्युत्पत्तय ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकातो ज्ञेयाः। तथाहि—

विदज्ञाने, विद सत्तायाम्, विदॢ लाभे विद विचारणे, एतेभ्यो हलश्चेति सूत्रेण करणाधिकरणयोर्घञ्प्रत्यये कृते वेदशब्दः साध्यते .... विदन्ति-जानन्ति, विद्यन्ते-भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते-लभन्ते, विन्दन्ते-विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्तिविषयः पृ० २८२)

अस्यायमर्थः—(विदन्ति-जानन्ति) येषु ग्रन्थेषु यथार्थविज्ञानं वर्तते येषामध्ययनेन वा यथार्थविज्ञानं भवति ते वेदाः। (विद्यन्ते-भवन्ति) येषामध्ययनेन विद्वांसो भवन्ति ते वेदाः। (विन्दन्ति विन्दन्ते-लभन्ते) येषु ग्रन्थेषु सर्वसुखसाधनं प्राप्तं भवति येषामध्ययनेन वा सर्वसुखानां प्राप्तिर्भवति ते वेदाः। (विन्दन्ते-विचारयन्ति) येषु ग्रन्थेषु सत्यासत्यविचारो वर्तते येषामध्ययनेन वा मनुष्याणां सत्यासत्यविचारो भवति ते वेदाः।

(महर्षिभाष्यम्)

एतस्मिन्नग्निमीड इत्यारभ्य यथा वः सुसहासातिपर्यन्त ऽष्टावष्टकाः सन्ति। तत्रैकैकस्मिन्नष्टावष्टावध्यायाः सन्ति। तेषा-मेकैकस्य प्रत्यध्यायं वर्गाः संख्यायन्ते।

प्रथमाष्टके		द्वितीयाष्टके		तृतीयाष्टके		चतुर्थाष्टके		पञ्चमाष्टके		षष्ठाष्टके		सप्तमाष्टके		अष्टमाष्टके	
अ.	व.	अ.	व.	अ.	व.	अ.	व.	अ.	व.	अ.	व.	अ.	व.	अ.	व.
१	३७	१	२६	१	३४	१	३३	१	२७	१	४०	१	४१	१	३०
२	३८	२	२७	२	२६	२	२८	२	३०	२	४०	२	३३	२	२४
३	३५	३	२६	३	३१	३	३१	३	३०	३	४९	३	२६	३	२८
४	२९	४	२९	४	२५	४	३६	४	३०	४	५४	४	२८	४	३१
५	३१	५	२९	५	२६	५	३०	५	२७	५	३८	५	३३	५	२७
६	३२	६	३२	६	३०	६	२५	६	२५	६	३८	६	२८	६	२७
७	३७	७	२५	७	२७	७	२५	७	३३	७	३९	७	३०	७	३०
८	२६	८	२७	८	२६	८	३२	८	३६	८	३३	८	२९	८	४९
	२६५		२२१		२२५		२५०		२३८		३३१		२४८		२४६

इयं संख्या प्रत्यष्टकं वेदितव्या। सर्वेष्टकेषु सर्वे वर्गाः संयुक्ताः २०२४ चतुर्विंशत्याधिके द्वे सहस्रे सन्ति। (ऋ० भा० १।१।१॥)

ऋग्वेदमहाभाष्यम्
अष्टकाध्यायवर्गमन्त्रसंख्याचित्रम्
(चित्रम् २)

१ अष्टकम्			२ अष्टकम्			३ अष्टकम्			४ अष्टकम्			५ अष्टकम्			६ अष्टकम्			७ अष्टकम्			८ अष्टकम्			
अध्यायः	वर्गाः	मन्त्राः	अध्यायः	वर्गाः	मन्त्राः	अध्यायः	वर्गाः	मन्त्राः	अध्यायः	वर्गाः	मन्त्राः	अध्यायः	वर्गाः	मन्त्राः	अध्यायः	वर्गाः	मन्त्राः	अध्यायः	वर्गाः	मन्त्राः	अध्यायः	वर्गाः	मन्त्राः	पूर्णसंख्या
१	३७	१६४	१	२६	१३७	१	३४	१७६	१	३३	१६८	१	२७	१४३	१	४०	२०६	१	४१	२००	१	२०	१६१	
२	३८	१८६	२	२७	१४३	२	२६	१३७	२	२८	१४६	२	३०	१५६	२	४०	२०४	२	३३	१६३	२	२४	१३३	
३	३५	१७३	३	२६	१३२	३	३१	१५८	३	३१	१६४	३	३०	१६५	३	४६	२५८	३	२६	१३५	३	२८	१४८	
४	२६	१५२	४	२६	१४२	४	२५	१३५	४	३६	१७७	४	३०	१५६	४	५४	२६८	४	२८	१३८	४	३१	१६०	
५	३१	१५५	५	२६	१५६	५	२६	१४८	५	३०	१६०	५	२७	१५०	५	३८	१६५	५	३३	१८६	५	२७	१४१	
६	३२	१६३	६	३२	१५७	६	३०	१५६	६	२५	१३२	६	२५	१३२	६	३८	१६७	६	२८	१४१	६	२७	१४०	
७	३७	१७६	७	२५	१३७	७	२७	१४४	७	३५	१७६	७	३३	१६५	७	३६	१६८	७	३०	१५३	७	३०	१७२	
८	२६	१३५	८	२७	१४०	८	२६	१५५	८	३२	१६६	८	३६	१८३	८	३३	२०४	८	२६	१४४	८	४६	२१८	
वर्गाः	२६५			२२१			२२५			२५०			२३८			३३१			२४८			२४६		२०२४
मन्त्राः		१३४०			११४७			१२०९			१२८६			१२६३			१७३०			१२६३			१२८१	१०५२२

(चित्रम् ३)

मण्डलानुवाकसूक्तमन्त्रसंख्याचित्रम्

मण्डलानि		अनुवाकाः	सूक्तानि	मन्त्राः
१		२४	१९१	१९७६
२		४	४३	४२९
३		५	६२	६१७
४		५	५८	५८९
५		६	८७	७२७
६		६	७५	७६५
७		६	१०४	८४१
८		१०	१०३	१७१६
९		७	११४	११०८
१०		१२	१९१	१७५४
पूर्णसंख्या	१०	८५	१०२८	१०५२२

(महर्षिभाष्यम्)

"तथाऽस्मिन्नृग्वेदे दश मण्डलानि सन्ति"

ऋ० भा० १ । १ । १ ॥

अस्मिन्निति पदं शाखाव्यवच्छेदाय । तत्र भेदं ब्रूते शौनकः—

(सूक्तसंख्या)

एतत् सहस्रं दश सप्त चैव, अष्टावतो बाष्कलकेऽधिकानि ।
सहस्रमेतत् सूक्तानां निश्चितं खैलिकैर्विना ।
दश सप्त च पठ्यन्ते संख्यातं वै पदक्रमम् ॥

(शौनकानुक्रमणी ३६, ३९)

अस्यायमर्थः—खिलवर्जम् ऋग्वेदे एकसहस्रं सप्तदश १०१७ सूक्तानि सन्ति । (खिलेषु एकादश ११ सूक्तानि भवन्ति तत्संकलनेन १०१७+११=१०२८ सूक्तसंख्या सम्पद्यते)। बाष्कलशाखायामतः १०१७ सूक्तेभ्योऽष्टौ सूक्तान्यधिकानि (१०२५) सन्ति । पदक्रमादीनामपि संख्या प्रदर्शिताऽस्ति ।

(अनुवाकसंख्या)

तान् पारणे शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टा न खिलेषु विप्राः ॥

पञ्चाशीतिर्दाशतयेऽनुवाका दृष्टाः पुराणैर्ऋषिभिर्महात्मभिः ।

(शौनकानुक्रमणी ३६, ३७)

अस्यायमर्थः—ऋग्वेदे पञ्चाशीतिः अनुवाकाः सन्ति । खिलेष्वनुवाकविभागो नास्तीति । इयमेव संख्या शाकलचरणान्तर्गतशैशिरीयशाखायाः पारायणस्य ॥

अस्मिन् ऋग्वेदे दशमण्डलानि सन्तीत्युक्त्वा ऋषिभाष्येऽग्रे प्रतिमण्डलमनुवाकसूक्तमन्त्रसंख्या निरूपिता । तत्र ऋषिप्रदर्शितप्रकारमनुसृत्य प्रतिमण्डलमनुवाकमन्त्रसूक्तसंख्या निरूप्यते तत्र चाष्टकाध्यायवर्गसंकेतश्च क्रियते ।

(चित्रम् ४)

तत्र प्रथमे मण्डले २४ अनुवाकाः, १९१ सूक्तानि, १९७६ मन्त्राः सन्ति। तद्विभागस्त्वित्थम्—

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
१	१ अ	९		११	८		२१	६	७	३१	१८		४१	९
	२	९	४	१२	१२		२२	२१		३२	१५		४२	१०
	३	१२		१३	१२		२३	२४		३३ अ३	१५		४३	९
२	४	१०		१४	१२	६	२४	१५		३४	१२	९	४४	१४
	५	१०		१५	१२		२५	२१		३५	११		४५	१०
	६	१०		१६	९		२६	१०	८	३६	२०		४६	१५
	७	१०		१७	९		२७	१३		३७	१५		४७ इ	१०
३	८	१०	५	१८	९		२८	९		३८	१५		४८	१६
	९	१०		१९	९		२९	७		३९	१०		४९	४
	१०	१२		२० आ	८		३०	२२		४०	८		५०	१३

अ प्रथमाष्टके प्रथमाध्यायारम्भः अत्र ३७ वर्गाः । आ प्रथमाष्टके द्वितीयाध्यायारम्भः अत्र ३८ वर्गाः।
अ३ ,, तृतीयाध्यायारम्भः अत्र ३५ वर्गाः । इ ,, चतुर्थाध्यायारम्भः अत्र २९ वर्गाः।

२

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
१०	५१	१५		७२	१०		९३	१२		११४	११		१३५	९
	५२	१५		७३	१०	१५	९४	१६		११५	६		१३६	७
	५३	११	१३	७४	९		९५ उ	११	१७	११६	२५		१३७ ऋ	३
	५४	११		७५	५		९६	९		११७	२५		१३८	४
	५५	८		७६	५		९७	८		११८	११		१३९	११
	५६	६		७७	५		९८	३		११९	१०	२१	१४०	१३
	५७	६		७८	५		९९	१		१२०	१२		१४१	१३
११	५८	९		७९	१२		१००	१९	१८	१२१	१५		१४२	१३
	५९	७		८०	१६		१०१	११		१२२ उ३	१५		१४३	८
	६०	५		८१ इ३	९		१०२	११		१२३	१३		१४४	७
	६१	१६		८२	६		१०३	८		१२४	१३		१४५	५
	६२ ई	१३		८३	६		१०४	९		१२५	७		१४६	५
	६३	९		८४	२०		१०५	१९		१२६	७		१४७	५
	६४	१५	१४	८५	१२	१६	१०६	७	१९	१२७	११		१४८	५
१२	६५	५		८६	१०		१०७	३		१२८	८		१४९	५
	६६	५		८७	६		१०८	१३		१२९	११		१५०	३
	६७	५		८८	६		१०९	८		१३०	१०		१५१	९
	६८	५		८९	१०		११०	९		१३१	७		१५२	७
	६९	५		९०	९		१११	५		१३२	६		१५३	४
	७०	६		९१	२३		११२	२५		१३३	७		१५४	६
	७१	१०		९२	१८		११३ ऊ	२०	२०	१३४	६		१५५	६

ई प्रथमाष्टके पञ्चमाध्यायारम्भः अत्र ३१ वर्गाः। इ३ प्रथमाष्टके षष्ठाध्यायारम्भः अत्र ३२ वर्गाः।
उ " सप्तमाध्यायारम्भः अत्र ३७ वर्गाः। ऊ " अष्टमाध्यायारम्भः अत्र २६ वर्गाः।
उ३ द्वितीयाष्टके प्रथमाध्यायारम्भः अत्र २६ वर्गाः। ऋ द्वितीयाष्टके द्वितीयाध्यायारम्भः अत्र २७ वर्गाः।

३

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्रा
	१५६	५		१६४	५२		१७२	३	२४	१८०	१०		१८८	११
२२	१५७	६	२३	१६५	१५		१७३	१३		१८१	९		१८९	८
	१५८ ऋ	६		१६६ ऋ३	१५		१७४	१०		१८२	८		१९०	८
	१५९	५		१६७	११		१७५	६		१८३	६		१९१	१६
	१६०	५		१६८	१०		१७६	६		१८४ लृ	६			
	१६१	१४		१६९	८		१७७	५		१८५	११			
	१६२	२२		१७०	५		१७८	५		१८६	११			
	१६३	१३		१७१	६		१७९	६		१८७	११			

(चित्रम् ५)

द्वितीये मण्डले ४ अनुवाकाः, ४३ सूक्तानि, ४२९ मन्त्राः सन्ति । तद्विभागस्त्वित्थम्-

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्रा
१	१	१६		१०	६		१९	९		२८	११		३७ ए३	६
	२	१३		११	२१		२०	९		२९	७		३८	११
	३	११	२	१२	१५		२१	६		३०	११		३९	८
	४	९		१३	१३		२२	४		३१	७		४०	६
	५	८		१४	१२	३	२३	१९		३२	८		४१	२१
	६	८		१५	१०		२४ ए	१६	४	३३	१५		४२	३
	७	६		१६	९		२५	५		३४	१५		४३	३
	८	६		१७	९		२६	४		३५	१५			
	९ लृ३	६		१८	९		२७	१७		३६	६			

ऋ द्वितीयाष्टके तृतीयाध्यायारम्भः अत्र २६ वर्गाः । ऋ३ द्वितीयाष्टके चतुर्थाध्यायारम्भः अत्र २९ वर्गाः ।
लृ " पञ्चमाध्यायारम्भः अत्र २६ वर्गाः । लृ३ द्वितीयाष्टके षष्ठाध्यायारम्भः अत्र ३२ वर्गाः ।
ए " सप्तमाध्यायारम्भः अत्र २७ वर्गाः । ए३ " अष्टमाध्यायारम्भः अत्र २७ वर्गाः ।

(चित्रम् ६)

तृतीये मण्डले ५ अनुवाकाः, ६२ सूक्तानि, ६१७ मन्त्राः सन्ति । तद्विभागस्त्वित्थम्—

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
१	१	२३		१४	७		२७	१५		४० ओ	९		५३	२४
	२	१५		१५	७		२८	६		४१	९	५	५४	२२
	३	११		१६	६		२९	१६		४२	९		५५	२२
	४	११		१७	५	३	३० ऐ२	२२		४३	८		५६ ओ२	८
	५	११		१८	५		३१	२२		४४	५		५७	६
	६	११		१९	५		३२	१७		४५	५		५८	९
	७ ऐ	११		२०	५		३३	१३		४६	५		५९	९
	८	११		२१	५		३४	११		४७	५		६०	७
	९	९		२२	५		३५	११		४८	५		६१	७
	१०	९		२३	५		३६	११		४९	५		६२	१८
	११	९		२४	५		३७	११		५०	५			
	१२	९		२५	५		३८	१०		५१	१२			
२	१३	७		२६	९	४	३९	९		५२	८			

ऐ तृतीयाष्टके प्रथमाध्यायारम्भः । अत्र ३४ वर्गाः ।

ऐ२ ,, द्वितीयाध्यायारम्भः । अत्र २६ वर्गाः ।

ओ ,, तृतीयाध्यायारम्भः । अत्र ३१ वर्गाः ।

ओ२ ,, चतुर्थाध्यायारम्भः । अत्र २५ वर्गाः ।

(चित्रम् ७)

चतुर्थे मण्डले ५ अनुवाकाः, ५८ सूक्तानि, ५८९ मन्त्राः सन्ति। तद्विभागस्त्वित्थम्—

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
१	१	२०		१३	५		२५	८		३७	८		४९	
	२	२०		१४	५		२६	७		३८	१०		५०	११
	३	१६		१५	१०		२७	५		३९	६		५१ ख	[illegible]
	४	१५		१६	२१		२८	५		४०	५		५२	[illegible]
	५ औ	१५		१७	२१		२९	५		४१	११		५३	[illegible]
	६	११		१८	१३		३०	२४		४२	१०		५४	
	७	११		१९ औ३	११		३१	१५		४३	७		५५	[illegible]
	८	८		२०	११		३२	२४		४४	७		५६	७
	९	८		२१	११	४	३३ क	११		४५	७		५७	८
	१०	८	३	२२	११		३४	११	५	४६	७		५८	११
२	११	६		२३	११		३५	९		४७	४			
	१२	६		२४	११		३६	९		४८	५			

औ　तृतीयाष्टके　पञ्चमाध्यायारम्भः।　　अत्र २६ वर्गाः।
औ३　,,　षष्ठाध्यायारम्भः।　　अत्र ३० वर्गाः।
क　,,　सप्तमाध्यायारम्भः।　　अत्र २७ वर्गाः।
ख　,,　अष्टमाध्यायारम्भः।　　अत्र २६ वर्गाः।

(चित्रम् ८)

पञ्चमे मण्डले ६ अनुवाकाः, ८७ सूक्तानि, ७२७ मन्त्राः सन्ति । तद्विभागस्त्वित्थम्—

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
१	१	१२		१९	५		३७	५		५५	१०	६	७३	१०
	२	१२		२०	४		३८	५		५६	९		७४	१०
	३	१२		२१	४		३९	५	५	५७	८		७५	९
	४	११		२२	४		४०	९		५८	८		७६	५
	५	११		२३	४		४१	२०		५९	८		७७	५
	६	१०		२४	४		४२	१८		६०	८		७८	९
	७	१०		२५	९		४३	१७		६१	१९		७९	१०
	८	७		२६	९		४४	१५		६२	९		८०	६
	९ ग	७		२७	६	४	४५	११		६३ च	७		८१	५
	१०	७		२८	६		४६	८		६४	७		८२	९
	११	६		२९	१५		४७ ङ	७		६५	६		८३	१०
	१२	६		३०	१५		४८	५		६६	६		८४	३
	१३	६		३१	१३		४९	५		६७	५		८५	८
	१४	६		३२	१२		५०	५		६८	५		८६	६
२	१५	५	३	३३ घ	१०		५१	१५		६९	४		८७	९
	१६	५		३४	९		५२	१७		७०	४			
	१७	५		३५	८		५३	१६		७१	३			
	१८	५		३६	६		५४	१५		७२	३			

ग चतुर्थाष्टके प्रथमाध्यायारम्भः । अत्र ३३ वर्गाः ।
घ ,, द्वितीयाध्यायारम्भः । अत्र २८ वर्गाः ।
ङ ,, तृतीयाध्यायारम्भः । अत्र ३१ वर्गाः ।
च ,, चतुर्थाध्यायारम्भः । अत्र ३६ वर्गाः ।

(चित्रम् ६)

षष्ठे मण्डले ६ अनुवाकाः ७५ सूक्तानि, ७६५ मन्त्राः सन्ति । तद्विभागस्त्वित्थम्—

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
१	१	१३		१८	१५		३५	५		५२	१७		६९	[illegible]
	२ छ	११		१९	१३		३६	५		५३	१०		७०	[illegible]
	३	८		२०	१३		३७	५		५४	१०		७१	[illegible]
	४	८		२१	१२		३८	५		५५	६		७२	[illegible]
	५	७	३	२२	११		३९	५		५६	६		७३	[illegible]
	६	७		२३	१०		४०	५		५७	६		७४	[illegible]
	७	७		२४	१०		४१	५		५८	४		७५	[illegible]
	८	७		२५	९		४२	४		५९	१०			
	९	७		२६	८		४३	४		६०	१५			
	१०	७		२७	८	४	४४	२४		६१	१४			
	११	६		२८	८		४५	३३	६	६२ ट	११			
	१२	६		२९ झ	६		४६	१४		६३	११			
	१३	६		३०	५		४७	३१		६४	६			
	१४	६		३१	५		४८ ञ	२२		६५	६			
	१५	१९		३२	५		४९	१५		६६	११			
२	१६	४८		३३	५	५	५०	१५		६७	११			
	१७ ज	१५		३४	५		५१	१६		६८	११			

छ चतुर्थाष्टके पञ्चमाध्यायारम्भः । अत्र ३० वर्गाः ।
ज ,, षष्ठाध्यायारम्भः । अत्र २९ वर्गाः ।
झ ,, सप्तमाध्यायारम्भः । अत्र ३९ वर्गाः ।
ञ ,, अष्टमाध्यायारम्भः । अत्र ३२ वर्गाः ।
ट पञ्चमाष्टके प्रथमाध्यायारम्भः । अत्र २७ वर्गाः ।

(चित्रम् १०)

सप्तमे मण्डले ६ अनुवाकाः, १०४ सूक्तानि, ८४१ मन्त्राः सन्ति । तद्विभागस्त्वित्थम्—

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
१	१	२५		२२ ड	९		४३	५		६४	५		८५	५
	२ ठ	११		२३	६		४४	५		६५	५		८६	८
	३	१०		२४	६		४५	४		६६	१९		८७	७
	४	१०		२५	६		४६	४		६७	१०		८८	७
	५	९		२६	५		४७	४		६८	९		८९	५
	६	७		२७	५		४८	४		६९	८	६	९०	७
	७	७		२८	५		४९	४		७०	७		९१	७
	८	७		२९	५		५०	४	५	७१	६		९२	५
	९	६		३०	५		५१	३		७२	५		९३	८
	१०	५		३१	१२		५२	३		७३	५		९४	१२
	११	५		३२	२७		५३	३		७४	६		९५	६
	१२	३		३३	१४		५४	३		७५	८		९६	६
	१३	३	३	३४	२५		५५	८		७६	७		९७	१०
	१४	३		३५	१५	४	५६	२५		७७	६		९८	७
	१५	१५		३६ ढ	९		५७	७		७८	५		९९	७
	१६	१२		३७	८		५८	६		७९	५		१००	७
	१७	७		३८	८		५९	१२		८०	३		१०१ थ	६
२	१८	२५		३९	७		६० ण	१२		८१ त	६		१०२	३
	१९	११		४०	७		६१	७		८२	१०		१०३	१०
	२०	१०		४१	७		६२	६		८३	१०		१०४	२५
	२१	१०		४२	६		६३	६		८४	५			

ठ पञ्चमाष्टके द्वितीयाध्यायारम्भः अत्र ३० वर्गाः । ड पञ्चमाष्टके तृतीयाध्यायारम्भः अत्र ३० वर्गाः ।
ढ ,, चतुर्थाध्यायारम्भः अत्र ३० वर्गाः । ण ,, पञ्चमाध्यायारम्भः अत्र २७ वर्गाः ।
त ,, षष्ठाध्यायारम्भः अत्र २५ वर्गाः । थ ,, सप्तमाध्यायारम्भः अत्र ३३ वर्गाः ।

(चित्रम् ११)

अष्टमे मण्डले १० अनुवाकाः, १०३ सूक्तानि, १७१६ मन्त्राः सन्ति। तद्विभागस्त्वित्यम्-

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
१	१	३४		२२	१८		४३	३३		६४	१२		८५	[illegible]
	२	४२		२३	३०		४४	३०		६५	१२		८६	[illegible]
	३	२४		२४	३०		४५	४२		६६	१५		८७	[illegible]
	४	२१		२५	२४		४६ फ	३३	८	६७	२१		८८	६
	५ द	३९		२६	२५		४७	१८		६८ ब	१९		८९	७
२	६	४८		२७	२२		४८	१५		६९	१८	१०	९०	६
	७	३६		२८	५	वालखिल्येऽनुवाकविभागो नास्ति (४९—५९)	४९	१०		७०	१५		९१	७
	८	२३		२९	१०		५०	१०		७१	१५		९२	३३
	९	२१		३०	४		५१	१०		७२	१८		९३	३४
	१०	६		३१	१८		५२	१०		७३	१८		९४	१२
	११ ध	१०		३२ प	३०		५३	८		७४	१५		९५	[illegible]
	१२	३३		३३	१९		५४	८		७५	१६		९६	२१
३	१३	३३		३४	१८		५५	५		७६	१२		९७	१५
	१४	१५		३५	२४		५६	५		७७	११		९८ म	१२
	१५	१३	५	३६	७		५७	४	९	७८	१०		९९	८
	१६	१२		३७	७		५८	३		७९	९		१००	१२
	१७	२५		३८	१०		५९	७		८०	१०		१०१	१६
	१८	२२		३९	१०	७	६०	२०		८१	९		१०२	२२
	१९	३७		४०	१२		६१	१८		८२ भ	९		१०३	१४
	२०	२६		४१	१०		६२	१२		८३	९			
४	२१ न	१८	६	४२	६		६३	१२		८४	९			

द पञ्चमाष्टके अष्टमाध्यायारम्भः अत्र ३१ वर्गाः।
न षष्ठाष्टके द्वितीयाध्यायारम्भः अत्र ४० वर्गाः।
फ ,, चतुर्थाध्यायारम्भः अत्र २४ वर्गाः।
भ ,, षष्ठाध्यायारम्भः अत्र ३८ वर्गाः।
ध षष्ठाष्टके प्रथमाध्यायारम्भः अत्र ४० वर्गाः।
प ,, तृतीयाध्यायारम्भः अत्र ४१ वर्गाः।
ब पञ्चमाध्यायारम्भः अत्र ३८ वर्गाः।
म ,, सप्तमाध्यायारम्भः अत्र ३१ वर्गाः।

(चित्रम् १२)

नवमे मण्डले ७ अनुवाकाः, ११४ सूक्तानि, ११०८ मन्त्राः सन्ति। तद्विभागस्त्वित्थम्—

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
१	१	१०		१९	७		३७	६		५५	४		७३	९
	२	१०		२०	७		३८	६		५६	४		७४	९
	३	१०		२१	७		३९	६		५७	४		७५	५
	४	१०		२२	७		४०	६		५८	४		७६ व	५
	५	११		२३	७		४१	६		५९	४		७७	५
	६	९		२४	७		४२	६		६०	४		७८	५
	७	९	२	२५	६		४३ र	६	३	६१	३०		७९	५
	८	९		२६	६		४४	६		६२	३०		८०	५
	९	९		२७	६		४५	६		६३	३०		८१	५
	१०	९		२८	६		४६	६		६४	३०		८२	५
	११	९		२९	६		४७	५		६५ ल	३०		८३	५
	१२	९		३०	६		४८	५		६६	३०		८४	५
	१३ य	९		३१	६		४९	५		६७	३२		८५	१२
	१४	८		३२	६		५०	५	४	६८	१०	५	८६	४८
	१५	८		३३	६		५१	५		६९	१०		८७	९
	१६	८		३४	६		५२	५		७०	१०		८८	८
	१७	८		३५	६		५३	४		७१	९		८९	७
	१८	७		३६	६		५४	४		७२	९		९०	६

य षष्ठाष्टके अष्टमाध्यायारम्भः। अत्र ३३ वर्गाः।
र सप्तमाष्टके प्रथमाध्यायारम्भः। अत्र ४१ वर्गाः।
ल ,, द्वितीयाध्यायारम्भः। अत्र ३३ वर्गाः।
व ,, तृतीयाध्यायारम्भः। अत्र २६ वर्गाः।

२

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
	९१ श	६		९६	२४		१०१ ष	१६		१०६	१४		१११	[illegible]
	९२	६	६	९७	५८		१०२	८		१०७	२६		११२	[illegible]
	९३	५		९८	१२		१०३	६		१०८	१६		११३	[illegible]
	९४	५		९९	८	७	१०४	६		१०९	२२		११४	[illegible]
	९५	५		१००	९		१०५	६		११०	१२			

(चित्रम् १३)

दशमे मण्डले १२ अनुवाकाः, १९१ सूक्तानि, १७५४ मन्त्राः सन्ति। तद्विभागस्त्वित्थम्—

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्रा
१	१	७		१२	९		२३	७		३४	१४		४५	[illegible]
	२	७		१३	५		२४	६		३५	१४		४६ ॐ	१०
	३	७		१४	१६		२५	११		३६	१४		४७	८
	४	७		१५	१४		२६	९		३७	१२		४८	११
	५	७		१६	१४		२७	२४		३८	५		४९	११
	६ स	७	२	१७	१४		२८	१२		३९	१४		५०	[illegible]
	७	७		१८	१४		२९	८		४०	१४		५१	[illegible]
	८	९		१९ ह	८	३	३०	१५		४१	३		५२	[illegible]
	९	९		२०	१०		३१	११		४२	११		५३	११
	१०	१४		२१	८		३२	९	४	४३	११		५४	[illegible]
	११	९		२२	१५		३३ •	९		४४	११		५५	[illegible]

श सप्तमाष्टके चतुर्थाध्यायारम्भः अत्र २८ वर्गाः । ष सप्तमाष्टके पञ्चमाध्यायारम्भः अत्र ३३ वर्गाः।
स „ षष्ठाध्यायारम्भः अत्र २८ वर्गाः । ह „ सप्तमाध्यायारम्भः अत्र ३० वर्गाः।
• „ अष्टमाध्यायारम्भः अत्र २९ वर्गाः। ॐ अष्टमाष्टके प्रथमाध्यायारम्भः अत्र ३० वर्गाः।

२

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
	५६	७		७६	८		९६	१३		११६	९		१३६	७
	५७	६		७७	८		९७	२३		११७	९		१३७	७
	५८	१२		७८	८		९८	१२		११८	९		१३८	६
	५९	१०		७९	७		९९	१२		११९	१३		१३९	६
	६०	१२		८०	७	९	१००	१२		१२० ळ	९		१४०	६
५	६१	२७		८१	७		१०१	१२		१२१	१०		१४१	६
	६२ ॅ	११		८२	७		१०२	१२		१२२	८		१४२	८
	६३	१७		८३	७		१०३	१३		१२३	८		१४३ ॡ	६
	६४	१७		८४	७		१०४	११		१२४	९		१४४	६
	६५	१५	७	८५	४७		१०५	११		१२५	८		१४५	६
	६६	१५		८६ ᐱक	२३		१०६ ँ	११		१२६	८		१४६	६
	६७	१२		८७	२५		१०७	११		१२७	८		१४७	५
	६८	१२		८८	१९		१०८	११		१२८	९		१४८	५
६	६९	१२		८९	१८		१०९	७	११	१२९	७		१४९	५
	७०	११		९०	१६		११०	११		१३०	७		१५०	५
	७१	११	८	९१	१५		१११	१०		१३१	७		१५१	५
	७२	९		९२	१५		११२	१०		१३२	७	१२	१५२	५
	७३ अः	११		९३	१५	१०	११३	१०		१३३	७		१५३	५
	७४	६		९४	१४		११४	१०		१३४	७		१५४	५
	७५	९		९५ ᐱप	१८		११५	९		१३५	७		१५५	५

ॅ अष्टमाष्टके द्वितीयाध्यायारम्भः अत्र २४ वर्गाः । अः अष्टमाष्टके तृतीयाध्यायारम्भः अत्र २८ वर्गाः ।
ᐱक ,, चतुर्थाध्यायारम्भः अत्र ३१ वर्गाः । ᐱप ,, पञ्चमाध्यायारम्भः अत्र २७ वर्गाः ।
ँ ,, षष्ठाध्यायारम्भः अत्र २७ वर्गाः । ळ ,, सप्तमाध्यायारम्भः अत्र ३० वर्गाः ।
ॡ ,, अष्टमाध्यायारम्भः अत्र ४९ वर्गाः ।

३

अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः	अनुवाकः	सूक्तम्	मन्त्राः
	१५६	५		१६४	५		१७२	४		१८०	३		१८८	३
	१५७	५		१६५	५		१७३	६		१८१	३		१८९	३
	१५८	५		१६६	५		१७४	५		१८२	३		१९०	३
	१५९	६		१६७	४		१७५	४		१८३	३		१९१	४
	१६०	५		१६८	४		१७६	४		१८४	३			
	१६१	५		१६९	४		१७७	३		१८५	३			
	१६२	६		१७०	४		१७८	३		१८६	३			
	१६३	६		१७१	४		१७९	३		१८७	५			

अस्मिन् ऋग्वेदे दश (१०) मण्डलानि, पञ्चाशीतिः (८५) अनुवाकाः, एकसहस्रमष्टाविंशतिश्च (१०२८) सूक्तानि, अथ च अष्टौ (८) अष्टकाः, चतुःषष्टिः (६४) अध्यायाः, चतुर्विंशत्यधिके द्वे सहस्रे (२०२४) वर्गाः । मन्त्राश्च दश सहस्रं पञ्चशतं द्वाविंशतिश्च (१०५२२) सन्तीति बोध्यम् ।

(महर्षिभाष्यम्)

स एतैः पूर्वोक्ताष्टकाध्यायवर्गमण्डलानुवाकसूक्तमन्त्रैर्भूषितोऽयमृग्वेदोऽस्तीति वेदितव्यम् ।

ऋ० भा० १ । १ । १ ॥

अपौरुषेयोऽयमष्टकाध्यायवर्गमण्डलानुवाकसूक्तमन्त्रविभागः, नत्वार्षः । इत्यनेन–

अष्टकाध्यायविच्छेदः पुराणैर्ऋषिभिः कृतः ।
उद्ग्राहार्थं प्रदेशानामिति[1] मन्यामहे वयम् ॥
वर्गाणामपि निर्देश आर्ष एवेति निश्चयः ।
ब्राह्मणेष्वपि दृश्यन्ते वर्गसंशब्दनादि च ॥

(वेङ्कट माधव ऋ० भा० ५ । ५ ।)

१–प्रदेशानाम् उद्ग्राहार्थम् = उदाहरणनिर्देशार्थमित्यर्थः ।

इत्यादि वेङ्कटमाधवोक्तमपास्तम् ।

अत्राह महर्षिः—

अत्राष्टकादीनां विधानमेतदर्थमस्ति यथा सुगमतया पठनपाठन-मन्त्रपरिगणनं विद्याप्रकरणबोधश्च भवेदेतदर्थमेतद् विधानं कृतमस्तीति।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका प्रश्नोत्तरविषयः पृ० ६८६)

इदमत्रानुसन्धेयम्—मन्त्राणामर्थवैविध्यात् कश्चिदर्थोऽनुवाके समाप्यते किंचित् प्रकरणं सूक्ते समाप्तिं निगच्छति तथाऽपरश्च विषयो मण्डले समाप्तो भवति । एवमादिरर्थविषयविभागतः परिच्छेदः । सचायमपौरुषेयो विभागो न तु ऋषिभिः कर्तुं शक्यते मन्त्राणां विविधार्थस्य ब्रह्मणा निर्धारितत्वात् । तथाहि—

अष्टावध्याया यस्मिन् सोऽष्टकः । प्रत्यष्टकमष्टावध्याया भवन्ति । अधीयते पठ्यते कश्चिद् विशिष्टविषयो यस्मिन् सोऽध्यायः । वर्जनं वर्गः समानविभागेन पृथक्करणम् । वर्गैर्मन्त्राणां प्रायः समानविभागः क्रियते । मण्डयति भूषयति विशिष्टं प्रकरणमिति मण्डलम् । अनूच्यते अनुक्रमेण कथ्यते कश्चिद् विषयो यस्मिन् सोऽनुवाकः । सुष्ठूच्यते सम्यक्तया वर्ण्यते किंचित् प्रकरणं यत्र तत् सूक्तम् । मन्त्रा मननात् कश्चिद् गम्भीरप्रज्ञ एव मन्त्रानवबोद्धुं समर्थ इति ।

(मण्डलेष्वनुवाकसंख्यामाह शौनकः—)

आद्ये चतुर्विंशति (२४) र्ह्यनुवाकाः ।
अत परं मण्डलं यच्चतुष्कम् (४) ।
द्वे पञ्चके (५–५) त्रीणि षट्कानि (६–६–६) चैव ।
दशा (१०) ष्टकं, सप्त (७) नवमं, द्वादशान्त्यम् (१२) ॥

(शौनकानुक्रमणी ३२)

अस्यायमर्थः–आद्ये प्रथमे मण्डले चतुर्विंशतिः अनुवाकाः । अतः परं यत् मण्डलं द्वितीयमित्यर्थस्तत्र चतुष्कं चत्वारोऽनुवाकाः । द्वे पञ्चके=अतःपरं द्वयोर्मण्डलयोस्तृतीयचतुर्थयोरित्यर्थः पञ्च पञ्चानुवाकाः । त्रीणी षट्कानि=अतः परं त्रिषु मण्डलेषु पञ्चमषष्ठसप्तममण्डलेष्वित्यर्थः षट् षट् अनुवाकाः । दशाष्टकम्=अष्टमे मण्डले दशानुवाकाः । सप्त नवमं=नवमे मण्डले सप्तानुवाकाः । द्वादशान्त्यम्=अन्तिमे मण्डले दशमे मण्डल इत्यर्थः द्वादश अनुवाकाः सन्ति ।

(मण्डलेषु सूक्तसंख्यामाह शौनकः—)

१–एकाधिका स्यान् नवतिः शतं (१९१) च ।
वदन्ति वै मण्डलमादितो यत् ।
२–चत्वारिंशत् त्रीणि (४३) चाहुर्द्वितीयम् ।
३–सूक्ते च षष्टिं च (६२) तृतीयमाहुः ॥ ३३ ॥
४–अष्टापञ्चाशदपि (५८) यच्चतुर्थम् ।
५–सप्ताधिकाशीति (८७) रतः परं स्यात् ॥
६–पञ्चाधिका सप्तति (७५) रुत्तरं तु ।
७–चत्वारि वाशिष्ठमथो शतं (१०४) च ॥ ३४ ॥
८–द्वे चैव सूक्ते नवतिं (९२) च विद्यादथाष्टमम् ।
९–नवमं वै शतं स्यात् चतुर्दश प्याहुराधिकान्यप्यु (११४) ।
१०–आद्ये यदुक्तं दशमे तथैव (१९१) ॥ ३५ ॥
एतत् सहस्रं दश सप्त (१०१७) चैव ।
अष्टावतो वाष्कलके ऽधिकानि (१०२५) ।
तान् पारणे शाकले शैशिरीये ।
वदन्ति शिष्टा न खिलेषु विप्राः ॥ ३६ ॥
पञ्चाशीति दाशतये ऽनुवाका
दृष्टाः पुराणै ऋषिभिर्महात्माभिः ।
यस्तान् ऋग्विद् वेद चैवाप्यधीते
नाकपृष्ठं भजते ह शश्वत् ॥ ३७ ॥
अध्यायनां चतुः षष्टि (६४) मंण्डलानि दशैव (१०) तु
वर्गाणां तु सहस्रे द्वे संख्याते च षड्डुत्तरे (२००६) ॥ ३८ ॥
सहस्रमेतत् सूक्तानां निश्चितं खैलिकैर्विना ।
दश सप्त (१०१७) च पठ्यन्ते संख्यातं वै पदक्रमम् ॥ ३९ ॥
ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम् ॥ ४३ ॥

(शौनकानुक्रमणी ३३–३९, ४३)

अस्यायमर्थः—आदितो यन्मण्डलं प्रथमं तत्र १९१ सूक्तानि वदन्ति। द्वितीयं यन् मण्डलं तत्र ४३ सूक्तानि वदन्ति। तृतीयं यन् मण्डलं तत्र सूक्ते=सूक्तद्वयं षष्टिं च (६२) आहुः। यच्चतुर्थं मण्डलं तत्र ५८ सूक्तान्याहुः। अतः परं यत् पञ्चमं मण्डलं तत्र ८७ सूक्तान्याहुः। उत्तरं तु=अतः परं यत् षष्ठं मण्डलं तत्र ७५ सूक्तान्याहुः। अथो=अतः परं यत् सप्तमं मण्डलं यस्य वशिष्ठ ऋषिस्तत्र मण्डले १०४ सूक्तान्याहुः। अथाष्टमं यन् मण्डलं तत्र ९२ सूक्तानि विद्यात्। (अष्टमे मण्डले एकादश (११) खिलसूक्तानि तत्संकलनेन ९२+११=१०३ सूक्तानि भवन्ति)। यन् नवमं मण्डलं तत्र शतं चतुर्दश च (११४) अप्याहुः सूक्तानि। 'प्याहुः' इत्यत्र "वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः" इत्यपिशब्दस्याकारलोपः। चतुर्दश त्वाहुरित्यन्ये पठन्ति। आद्ये=प्रथमे मण्डले यदुक्तम्=१९१ सूक्तानि तावन्ति वदन्तीति दशमे तथैव १९१ सूक्तानि। दाशतये[1]=ऋग्वेदे पञ्चाशीतिः (८५) अनुवाकाः पुराणैर्महात्मभिर्दृष्टाः।ताननुवाकान् शाकल्यशिष्यशैशिरिप्रोक्त[2]शाखापारायणे शिष्टा विप्रा वदन्ति, परं न खिलेषु-खिलेष्वनुवाकविभागो नास्ति। य ऋग्वेदवेत्ता तान् अनुवाकादीन् वेद, अपि चैवाधीते स ह शश्वत् सदा नाकपृष्ठं मोक्षपदं भजत इत्यर्थवादः। अस्मिन् ऋग्वेदे चतुःषष्टिः (६४) अध्यायाः। दश (१०) मण्डलानि। २००६ वर्गाः (खिलेषु १८ वर्गास्तत्संकलनेन २०२४ वर्गा भवन्ति)। ऋग्वेदस्य सर्वासु शाखासु १०५८० मन्त्रा एकः पादश्च भवन्ति इति शौनकमते पारायणसंख्या। शिष्टं २५ पृष्ठे व्याख्यातम्—महर्षिभाष्ये १०५८९ संख्या।

अस्मिन् व्याख्यास्यमान ऋग्वेदे १०५२२ मन्त्राः सन्तीति महर्षेरभिमतं तत्र विविधमतविवेचनं क्रियते।

१—दश अवयवा मण्डलाख्या यस्य तस्मिन् दाशतये=ऋग्वेदे। दशन् शब्दात् 'संख्याया अवयवे तयप्' शब्दानु० ५। २। ४२॥ इति तयप्। स्वार्थेऽण् प्रत्यये दाशतय शब्दो निष्पद्यते। 'टिड्ढाणञ्०' शब्दानु० ४। १। १५॥ इति दशतयशब्दाद् ङीपि दशतयी शब्दः सिध्यति। दशतयी शब्दः निरुक्त ७। ८। इत्यादिस्थलेषु द्रष्टव्यः। 'दाशतयी' इति च।

२—शाकल्यस्य पञ्च शिष्याः। मुद्गलो गालवः शालीयो वात्स्यः शैशिरिश्च। सर्वे शिष्यास्तैः प्रोक्ताः शाखाश्च शाकलनाम्ना प्रसिद्धा इत्यनुसन्धेयम्।

ऋग्वेदभाष्य को नीचे लिखे प्रकार से महर्षि प्रारम्भ करते हैं—

ऋग्वेदः

("अथर्ग्वेदभाष्यारम्भः)

भाष्य भाषा—(अथ) चारों वेदों और वेदों की शाखा आदि में विद्यमान विषयों पर चतुर्वेदविषयसूचीरूप ग्रन्थ लिख कर और ऋग्वेद के अति विस्तृत भाष्य का प्रकार भी दिखा कर तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का निर्माण करने के अनन्तर (ऋग्वेदभाष्यारम्भः) ऋग्वेद के इस भाष्य का आरम्भ [किया जाता है]।

प्रदीप भाषा—संवत् १९३३ अगहन मास की पूर्णिमा के दिन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका महर्षि ने पूर्ण की उन दिनों ऋषिवर बरेली नगर में विराजमान थे।

अथ शब्द यहाँ मङ्गलवाचक भी है। अथ शब्द को मङ्गलवाची बताने के लिये अर्थवाद के रूप में इस प्रकार कहा गया है कि—

'ओ३म्' और 'अथ' शब्द ऐसे हैं मानो ब्रह्म का कोई मुख हो और उसमें से ये दोनों शब्द निकले हों। ये दोनों शब्द 'ओ३म्' और 'अथ' माङ्गलिक हैं। अथवा (ब्रह्म) ब्रह्माण्ड की प्रथम ध्वनि ओ३म् और अथ शब्द हैं।

ओङ्कारं वेदेषु। अथकारं भाष्येषु॥ य० प्रा० १। १८, १९॥

इस कथन के अनुसार अथ शब्द का प्रयोग भाष्य के प्रारम्भ में महर्षि ने किया है।

भाष्य को आरम्भ करते हुए सर्वप्रथम ऋषिवर अपनी अति प्रिय ऋचा 'विश्वानि देव०' को स्मरण करते हैं। उसका प्रकरणसंगत अर्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में व्याख्यात का आश्रय लेकर अर्थ किया जाता है—

भा० भा०—हे (देव) सूर्य आदि सकल जगत् के और विद्या के प्रकाशक, हे (सवितः) सकल जगत् के निर्माण कर्ता प्रभो! आप (नः) हमारे (विश्वानि) सब (दुरितानि) इस वेदभाष्य करने के अनुष्ठान में जो दुष्ट विघ्न हैं उनको (परासुव) प्राप्त होने से पूर्व ही दूर कर दीजिये। और (यत्) जो इस अनुष्ठान में हमारे शरीर में आरोग्य, बुद्धि, सज्जनों का सहाय, चतुरता और सत्यविद्या के प्रकाश आदि (भद्रम्) कल्याण हैं (तत्) उस सब को (नः) हमारे लिये (आ सुव) प्राप्त कराइए।

(भाष्य के आरम्भ में महर्षिकृत मङ्गलश्लोक)

(या चतुर्वेदसंस्तावना) जो चारों वेदों की संस्तावना ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (विद्यानन्दम्) ज्ञानविज्ञानात्मक विद्या के ब्रह्मानन्दसहोदर आनन्द को (सम्+अवति) निरन्तर देती है [उस को] (संपूर्य) विषय निर्देश की उत्कृष्टता और भाषा आदि के औचित्य के साथ पूर्ण करके (निगमनिलयम्) वेदों के आधार (ईशम्) प्रभु को (संप्रणम्य) सर्वात्मना और सादर प्रणाम करके (अथ) उपर्युक्त का निर्माण करके अथवा विस्तृत वेदभाष्य को छोड़ कर समाप्त करने की इच्छा से अब (वेदत्र्यङ्क विधुयुतसरे) १९३४ विक्रमसंवत्सर (मार्गशुक्ले) अगहनमास के शुक्लपक्ष में (अङ्गभौमे)

६ तिथि मङ्गलवार के दिन (हि) निश्चित रूप से (अखिलगुणगुणिज्ञानदातुः) संसार के समस्त पदार्थों और उन पदार्थों के गुणों का ज्ञान देने वाले (ऋग्वेदस्य) ऋग्वेद के (भाष्यम्) भाष्य को मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती (कुर्वे) प्रारम्भ कर रहा हूं।

प्र० भा०—'चतुर्वेदसंस्तावना' इस से महर्षि ने यह सिद्धान्त प्रकट किया है कि अपौरुषेय वेद चार हैं तीन नहीं। 'विद्यानन्द' इस से ऋषिवर वेदाध्ययन की आवश्यकता क्यों है यह बताते हैं। 'निगमनिलयम्' इस से वेदों का अपौरुषेयत्व दर्शाया है। 'ईशम्' शब्द यह दर्शाता है कि क्योंकि प्रभु हमारा स्वामी है अतः हमारे कल्याण के लिये उसने हमें वेद दिये। 'संपूर्य' में सम् उपसर्ग यह भाव प्रकट करता है कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है और उसमें विषयों का निर्देश उचित ढंग से किया गया है। 'संप्रणम्य' में सम् उपसर्ग इस भाव का दर्शक है कि महर्षि के सर्वस्व प्रभु हैं उस प्रभु को सर्वात्मना प्रणाम कर रहे हैं और प्र उपसर्ग आदर वाचक कहा है। उपसर्गों के अनेक अर्थ संस्कृतभाष्य में देखो।

संवत्सर आदि लिखने में अङ्कों को विशेष शब्दों से निर्देश किया जाता है जैसे १ संख्या को चन्द्र कहेंगे क्योंकि चन्द्रमा एक है इत्यादि। और ये अङ्क जिस क्रम से कहे जाते हैं उस से उलटे क्रम से रखे जाते हैं। जैसे यहाँ वेद ४, त्रि ३, अङ्क ६, विधु=चन्द्र १, १६३४ विक्रम संवत्सर। अङ्ग शब्द ६ का वाचक है क्योंकि वेदाङ्ग ६ हैं।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के खण्डन पर भूमिकाभास नाम का ग्रन्थ छपा था उसमें लिखा है कि स्वामी दयानन्दसरस्वती संवत्सर लिखते समय 'मित' शब्द को विना लगाये संवत्सर का निर्देश करते हैं। जैसे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिखा है "कालरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे" और यहाँ ऋग्वेदभाष्य में लिखा है "वेदत्र्यङ्के"। ठीक यह होता कि कालरामाङ्कचन्द्रमिते और "वेदत्र्यङ्कमिते" लिखते। भूमिकाभासकार का यह कहना नितान्त अज्ञानतापूर्ण है क्योंकि मित शब्द विना लगाये भी विद्वान् संवत्सर को लिखते हैं जैसे वाचस्पतिमिश्र ने बिना मित शब्द लगाये संवत्सर का निर्देश किया है। यथा—"वस्वङ्कवसुवत्सरे"। विशेष प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखो पृ० २०। इस श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है।

भा० भा०—(ऋग्भिः स्तुवन्ति) ताण्ड्यमहाब्राह्मण आदि में यह वर्णन है कि ऋग्वेद के मन्त्रों के सहाय से विद्वान् लोग पदार्थों के गुणों का वर्णन करते हैं [जैसे सार्पराज्ञी ब्रह्मवादिनी ऋषिका ने जिन मन्त्रों के अर्थों का साक्षात्कार किया है ऋग्वेद के उन मन्त्रों (आयं गौः पृश्निरक्रमीत्० ऋ० १०। १८९। १ इत्यादि) से पृथिवी का वर्णन किया जाता कि यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है]। (इत्युक्तत्वात्) ताण्ड्यब्राह्मणकार आदि ऋषियों के ऐसे वचनों से यह सिद्ध है कि ऋग्वेद के मन्त्र सब वस्तुओं के गुणों का वर्णन करते हैं अतः (एते) ये (विद्वांसः) विद्वान् लोग (उक्तपूर्वम्) जैसा पूर्व वर्णन किया है कि ऋग्वेद संसार के समस्त पदार्थों और पदार्थों के गुणों का ज्ञान देने वाला है ऐसे (ऋग्वेदम्) ऋग्वेद को (वेदार्थज्ञानसाहित्यपठनपुरःसरम्) वेदार्थ ज्ञान

में सहायक अङ्ग उपाङ्ग आदि जितना साहित्य है उस सब के पठन पूर्वक (अधीत्य पढ़कर (तत्रस्थैः मन्त्रैः) ऋग्वेद में वर्तमान १०५२२ मन्त्रों से (ईश्वरम् आरभ्य भूमि पर्यन्तानां पदार्थानाम्) ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त सब पदार्थों के (गुणान्) गुणों को (यथावत्) ठीक तरह से (विदित्वा) समझ कर (कार्येषु) संसार के मनुष्यों के उपकारकार्य में (मतिं जनयन्ति) अपने उस ज्ञान का प्रयोग करते हैं अथवा (कार्येषु क्रिया में (मतिं जनयन्ति) अपनी बुद्धि या उस ज्ञान का प्रयोग करते हैं अर्थात् क्रियात्मकरूप से करके देखते हैं।

(अनया) इस ऋचा से (पदार्थानाम्) पदार्थों के (गुणकर्मस्वभावान्) गुण क्रिया और स्वभावों का (ऋचन्ति=स्तुवन्ति) वर्णन करते हैं अतः (सा ऋक्) वह ऋचा कहाती है ऋक् और वेद (जो यह सत्य सत्य ज्ञान का हेतु है) मिलकर ऋग्वेद शब्द बनता है। वेदशब्द की अनेक व्युत्पत्तियां ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में देखो (ऋग्वेदादि० पृष्ठ २८२, २८३)

(एतस्मिन्) इस ऋग्वेद में ("अग्निमीळ" इत्यारभ्य 'यथा वः सुसहासति पर्यन्ते) प्रथम मन्त्र 'अग्निमीळे पुरोहितम्०' इत्यादि से लेकर 'यथा वः सुसहासति०' इस अन्तिम मन्त्र तक (अष्टौ अष्टकाः सन्ति) आठ अष्टक हैं (तत्र एकैकस्मिन्) उन आठ अष्टकों में एक एक में (अष्टौ अष्टौ अध्यायाः सन्ति) आठ आठ अध्याय हैं। (तेषाम्) उन अध्यायों के मध्य में (एकैकस्य) एक एक अध्याय की (प्रत्यध्यायम् अध्यायक्रम से (वर्गाः संख्यायन्ते) वर्गों की संख्या भी लिखी जाती है [देखो पृष्ठ २३

(इयं संख्या) यह पृष्ठ २३ में लिखी संख्या (प्रत्यष्टकम् वेदितव्या) अष्टक क्रम से प्रत्येक अष्टक की जानो। (सर्वेषु अष्टकेषु) सब आठों अष्टकों में (सर्वे वर्गाः संयुक्ताः) सब वर्ग मिल कर (चतुर्विंशत्यधिके द्वे सहस्रे) चौबीस अधिक दो सहस्र अर्थात् २०२४ (सन्ति) हैं।

(तथा) और (अस्मिन् ऋग्वेदे) इस ऋग्वेद में (दश मण्डलानि सन्ति) दश मण्डल हैं।

प्र० भा०—ऋग्वेद का विभाग दो प्रकार से है—

१—अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र। २—मण्डल, सूक्त, मन्त्र। जहाँ मन्त्र के आगे चार अङ्क लिखें हों वहाँ अष्टक अध्याय वर्ग मन्त्र विभाग जानो। और जहाँ मन्त्र के आगे तीन अङ्क हों वहाँ मण्डल सूक्त मन्त्र विभाग समझो। ऋग्वेद में आठ अष्टक हैं और प्रत्येक अष्टक में आठ आठ अध्याय हैं इस प्रकार ६४ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में कितने वर्ग और मन्त्र हैं यह बात चित्र सं० २ में पृष्ठ २४ पर देखो। वर्ग प्रायः पाँच पाँच मन्त्रों पर नियत किया गया है। यदि सूक्त में पाँच से विभाग होने पर पाँच से कुछ कम या कहीं अधिक मन्त्र होते हैं तो ४, ३, या ६ आदि पर भी वर्ग की समाप्ति देखी जाती है। प्रत्येक अध्याय से वर्गसंख्या प्रारम्भ होती है और उस अध्याय की समाप्ति होने पर दूसरे अध्याय से फिर नई वर्ग संख्या

प्रारम्भ हो जाती है। पर वर्ग का पाँच पाँच का विभाग प्रत्येक सूक्त पर अलग किया जाता है अध्याय भी सूक्त के प्रारम्भ से ही आरम्भ होता है। और अष्टक भी किसी सूक्त की समाप्ति पर ही समाप्त होता है। अतः ये दोनों विभाग सर्वथा एक दूसरे से पृथक नहीं हैं।

ऋग्वेद का दूसरा विभाग मण्डल सूक्त और मन्त्रों के क्रम से है। इसके अन्तर्गत अनुवाक विभाग भी है। उसको चित्र सं० ३ में पृष्ठ २५ पर देखो। ये सब विभाग मन्त्रों में प्रतिपादित विषयों के दृष्टिकोण से हैं। ऋग्वेद में दश मण्डल हैं और प्रत्येक मण्डल में सूक्त और मन्त्र आदि का विभाग ऋषि प्रदर्शित शैली से दिखाते हैं—

प्रथम मण्डल में २४ अनुवाक हैं और १९१ सूक्त तथा १९७६ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र संख्या ४ में पृष्ठ २६–२८ पर देखो।

द्वितीय मण्डल में ४ अनुवाक हैं और ४३ सूक्त तथा ४२९ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र सं० ५ में पृष्ठ २८ पर देखो।

तृतीय मण्डल में ५ अनुवाक हैं और ६२ सूक्त तथा ६१७ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र सं० ६ में पृष्ठ २९ पर देखो।

चतुर्थ मण्डल में ५ अनुवाक हैं और ५८ सूक्त तथा ५८९ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र सं० ७ में पृष्ठ ३० पर देखो।

पञ्चम मण्डल में ६ अनुवाक हैं और ८७ सूक्त हैं तथा ७२७ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र सं० ८ में पृष्ठ ३१ पर देखो।

षष्ठ मण्डल में ६ अनुवाक हैं और ७५ सूक्त हैं तथा ७६५ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र सं० ९ में पृष्ठ ३२ पर देखो।

सप्तम मण्डल में ६ अनुवाक हैं और १०४ सूक्त हैं तथा ८४१ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र सं० १० में पृष्ठ ३३ पर देखो।

अष्टम मण्डल में १० अनुवाक हैं और १०३ सूक्त हैं तथा १७१६ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र सं० ११ में पृष्ठ ३४ पर देखो।

नवम मण्डल में ७ अनुवाक हैं और ११४ सूक्त तथा ११०८ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र सं० १२ में पृष्ठ ३५-३६ पर देखो।

दशम मण्डल में १२ अनुवाक हैं और १९१ सूक्त हैं तथा १७५४ मन्त्र हैं। उनका विभाग चित्र सं० १३ में पृष्ठ ३६-३८ पर देखो।

मण्डल सूक्त और मन्त्रों के विभाग बताने वाले उपर्युक्त चित्रों में हमने वर्णमाला के ६४ अक्षरों से ६४ अध्यायों पर जो टिप्पण दिये हैं उसमें यह भी साथ साथ दिखाया गया है कि मण्डल और सूक्त के अन्दर कहाँ पर अष्टक प्रारम्भ होते हैं और कहाँ प्रत्येक अष्टक का अध्याय प्रारम्भ होता है और उस अध्याय में कितने वर्ग हैं।

इस प्रकार संपूर्ण ऋग्वेद में १० मण्डल, ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त हैं और ८ अष्टक, ६४ अध्याय, २०२४ वर्ग और १०५२२ मन्त्र हैं।

भा० भा०—(सः अयम् ऋग्वेदः) वह यह ऋग्वेद (पूर्वोक्ताष्टकाध्यायवर्गमण्डलानुवाकसूक्तमन्त्रैः) जैसा ऊपर वर्णन किया है उसके अनुसार अष्टक अध्याय वर्ग तथा मण्डल अनुवाक सूक्त मन्त्रों के विभागों से (भूषितः) सार्थक विभागीकृत है।

प्र० भा०—यह अष्टक अध्याय आदि का विभाग अपौरुषेय है अर्थात् मनुष्यकृत नहीं है। ऋग्वेद के भाष्यकार वेङ्कट माधव ने जो यह कहा है कि अष्टक अध्याय का विभाग ऋषियों ने किया है (देखो पृष्ठ ३८)। यह बात असत्य है। महर्षि स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी महाराज ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में प्रश्नोत्तर विषय में अष्टक आदि के विभाग के नीचे लिखे कारण बताये हैं।

क. पठन पाठन की सुविधा

ख. मन्त्रों की गणना की सुविधा

ग. और पृथक् पृथक् विद्याओं के अनुसार पृथक् पृथक् प्रकरणों का ज्ञान।

इन विभागों को इस प्रकार समझो—

अष्टक—जिसमें आठ अध्याय हों उसे अष्टक कहते हैं।

अध्याय—जितने में किसी विशेष विषय का प्रतिपादन हो उसको अध्याय कहते हैं।

वर्ग—समान विभाग द्वारा जिसका विभाग सुगमता के लिये किया जाय उसको वर्ग कहते हैं। वर्ग प्रायः पाँच पाँच मन्त्रों पर समाप्त होता है।

मण्डल—प्रकरणविशेष को जो अलंकृत करे उसको मण्डल कहते हैं।

अनुवाक—कोई विषय जिसमें अनुक्रम से कहा जावे उसको अनुवाक कहते हैं।

सूक्त—जिसमें पूर्ण किसी विषय का वर्णन हो उसको सूक्त कहते हैं।

मन्त्र—अत्यन्त मनन करने से जो गूढ़ अर्थों को प्रकाशित करे वह मन्त्र कहाता है। कोई गम्भीर बुद्धिवाला ही मन्त्रार्थ समझने में समर्थ होता है।

यह प्रकरण आदि का विभाग मनुष्य की शक्ति से परे है वह तो ब्रह्म की कृति है।

शौनक ऋषि ने अपनी अनुक्रमणी में मण्डल आदि की संख्या के विषय में लिखा है कि—

प्रथम मण्डल में २४ अनुवाक हैं। उसके आगे जो दूसरा मण्डल है उसमें ४ अनुवाक हैं। उसके आगे के तीसरे और चौथे मण्डल में पाँच पाँच अनुवाक हैं। अगले तीन मण्डलों में अर्थात् पाँचवें, छठे और सातवें मण्डल में छै छै अनुवाक हैं।

अष्टम मण्डल में १० अनुवाक हैं। नवम मण्डल में ७ अनुवाक हैं, और अन्तिम दशम मण्डल में १२ अनुवाक हैं। (संस्कृत प्रमाण पृष्ठ ३९ पर देखो)।

प्रत्येक मण्डल में सूक्तसंख्या के विषय में शौनक ने अपनी अनुक्रमणी में इस प्रकार लिखा है कि—

ऋग्वेद के आदि प्रथम मण्डल को एक अधिक ९० और सौ सूक्तवाला कहते हैं अर्थात् १९१ सूक्त प्रथम मण्डल में हैं। द्वितीय मण्डल ४० और तीन सूक्तवाला है अर्थात् ४३ सूक्त द्वितीय मण्डल में हैं। तृतीय मण्डल में साठ और दो सूक्त अर्थात् ६२ सूक्त हैं। चतुर्थ मण्डल ५८ सूक्तवाला है। उस से अगला पञ्चम मण्डल ८७ सूक्त-वाला है। उस से अगला छठा मण्डल ७५ सूक्तवाला है। जिस सम्पूर्ण मण्डल का वशिष्ठ अर्थद्रष्टा ऋषि है उस सप्तम मण्डल में १०४ सूक्त हैं। अष्टम मण्डल में ९२ सूक्त हैं (यह सूक्तसंख्या खिल सूक्तों को छोड़ कर है। अष्टम मण्डल में ११ खिलसूक्त हैं अतः ९२+११=१०३ सूक्त अष्टम मण्डल में हैं। खिलों के सम्बन्ध में आगे विस्तार से लिखेंगे) नवम मण्डल में १४ अधिक सौ अर्थात् ११४ सूक्त हैं; और जितने सूक्त प्रथम मण्डल में बताये हैं उतने ही दशम मण्डल में सूक्त हैं अर्थात् १९१ सूक्त दशम मण्डल में हैं। (खिलों की ११ सूक्तसंख्या छोड़कर) १०१७ सूक्त ऋग्वेद में है। बाष्कलशाखा में इस १०१७ से आठ सूक्त अधिक है अर्थात् १०२५ सूक्त है प्राचीन महात्मा ऋषियों ने दश मण्डलयुक्त ऋग्वेद में ८५ अनुवाक देखे हैं। उन ८५ अनुवाकों का शाकल्यशिष्य शैशिरि प्रोक्त शाखा पारायण में वर्णन करते हैं। परन्तु यह अनुवाक विभाग खिलसूक्तों में नहीं है। जो व्यक्ति इन अनुवाकादि विभागों के अनुसार मन्त्रों को समझता है वह ऋग्वेद को ठीक ठीक समझ कर गुण गुणि ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त करता है। अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के अनेक साधनों में यह भी एक साधन विशेष है।

शौनक कहता है कि मन्त्रों के पदक्रम आदि सब की गणना करदी गई है। उसके अनुसार ऋग्वेद की पारायणसंख्या सब शाखामन्त्रों को मिला कर १०५८० और एक पाद है। यह शौनक के मत से लिखा गया है। (संस्कृत प्रमाण के लिये देखो पृष्ठ ४०)

महर्षि के मन्तव्य के अनुसार ऋग्वेद में १०५२२ मन्त्र हैं। मन्त्र संख्या के सम्बन्ध में विशेष कर द्विपदा आदि के विषय में सविस्तर वर्णन आगे करके महर्षि के मत का प्रतिपादन सप्रमाण किया जावेगा। संभवतः महर्षि ऋग्वेद की पारायणसंख्या १०५८९ मानते हों।

ऋक्संख्या

अस्मिन् व्याख्यातव्य ऋग्वेदे द्वाविंशत्यधिकपञ्चशतदशसहस्रम् (१०५२२) अपौरुषेया ऋचः सन्तीति महर्षेरभिमतम् । ऋक्संख्यायां हि नाना मतयो दृश्यन्ते। तत्र काचित् बालखिल्यसूक्तकृता, त्रीणि त्रीणि अर्द्धर्चहेतुका परा, अन्या द्विपदा-मूला, अपरा शाखाभेदाद्याश्रिता ।

(१)

ऋग्वेदस्याष्टमे मण्डल एकादश सूक्तानि (४९–५९ सूक्तानि) बालखिल्य-सूक्तान्युच्यन्ते । तथाहि—

बालखिल्यचित्रम्

(चित्रम् १४)

ऋ० मण्डलम् ८, सूक्तानि ४९–५९ ॥ अष्टकं ६, अध्यायः ४, वर्गाः १४–३१

वर्ग क्रम संख्या	वर्ग संख्या	सूक्त क्रमसंख्या	सूक्त संख्या	ऋचः	ऋचः
१	१४	१	४९	५	१०
२	१५			५	
३	१६	२	५०	५	१०
४	१७			५	
५	१८	३	५१	५	१०
६	१९			५	
७	२०	४	५२	५	१०
८	२१			५	
९	२२	५	५३	४	८
१०	२३			४	
११	२४	६	५४	४	८
१२	२५			४	
१३	२६	७	५५	५	५
१४	२७	८	५६	५	५
१५	२८	९	५७	४	४
१६	२९	१०	५८	३	३
१७	३०	११	५९	४	७
१८	३१			३	
				८० ऋचः	८० ऋचः

बालखिल्यसूक्तानां प्रतिवर्गम् ऋक्संख्याचित्रम्

(चित्रम् १५)

प्रतिवर्गम् ऋक्संख्या	वर्गसंख्या	समस्त ऋक्संख्या	विवरणम्
३	२	६	द्वयोर्वर्गयोस्तिस्रस्तिस्र ऋचः
४	६	२४	षट्सु वर्गेषु चतस्रश्चतस्र ऋचः
५	१०	५०	दशसु वर्गेषु पञ्च पञ्च ऋचः
	१८ वर्गाः	८० ऋचः	

एवमशीतिः (८०) बालखिल्यऋचः सन्ति तासामेकादश (११) सूक्तानि अष्टादश (१८) वर्गाश्च भवन्ति । केचिदेता बालखिल्यऋच ऋक्संख्यागणनाप्रसङ्गे परित्यजन्ति तेषामशीतिः संख्या न्यूना भवति । नव्यमते[1] १०५५२ ऋक्संख्या तत्र ८० संख्यान्यवकलनेन १०५५२-८०=१०४७२ ऋक्संख्या संपद्यते । इयं १०४७२ ऋक्संख्या महीदासस्य बालखिल्यवर्जम् । महर्षिस्तु संहितान्तर्गता एवैता बालखिल्यऋचो मन्यते तासां बालखिल्यऋचामपि पदपाठश्रवणात्, ऋष्याद्यनुक्रमणात्, ब्राह्मणे विनियोगदर्शनात्, ऋषिपारम्पर्यात्, स्वाध्यायदर्शनाच्च । तथाहि—

१—बालखिल्यऋचां पदपाठः—

संहितापाठ

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥

ऋ० ८।४९।१॥

१—नव्यमतमग्रे द्विपदाप्रकरणे विवेचितम् ।

पदपाठः

अभि । प्र । वः । सुऽराधसम् । इन्द्रम् । अर्च । यथा । विदे । यः । जरितृऽभ्यः । मघऽवा । पुरुऽवसुः । सहस्रेणऽइव । शिक्षति ।

एवं सर्वासां बालखिल्यऋचां शाकल्यकृतः पदपाठो दृश्यते । ततो नैता: खिलऋचः परिशिष्टा इत्यर्थः । यासां पदपाठाभावस्ताः खिलऋचो मन्यन्ते । तथा चोक्तम्—

यस्य पदाभावस्तस्य खैलिकत्वं सिद्धम् ।

(चरणव्यूह० पृष्ठम् १६)

२—बालखिल्यानामृष्यादयो ऽप्यनुक्रम्यन्ते । तथाहि—

अभि प्र० (ऋ० ८।४६) दश प्रस्कण्वः प्रागाथं तत् । प्र सु श्रुतं० (ऋ० ८।५०) पुष्टिगुः । यथा मनौ० (ऋ० ८।५१) श्रुष्टिगुः यथा मनौ० (ऋ० ८।५२) आयुः । उपमं त्वा० (ऋ० ८।५३) अष्टौ मेध्यः । एतत् ते० (ऋ० ८।५४) मातरिश्वा । आ नो विश्वे० (ऋ० ८।५४।३) इति वैश्वदेवः । प्रगाथः । भूरीत्० (ऋ० ८।५५) पञ्च कृशः, प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः, गायत्रं तृतीयापञ्चम्यावनुष्टुभौ । प्रति ते० (ऋ० ८।५६) पृषध्रोऽन्त्याग्निसौरी पाङ्क्तः । युवं देवा:० (ऋ० ८।५७) चतुष्कं मेध्य आश्विनं त्रैष्टुभम् । यमृत्विज० (ऋ० ८।५८) तृचं वैश्वदेवम्, आद्य ऋत्विक्स्तुतिर्वा । इमानि वां० (ऋ० ८।५९) सप्त सुपर्ण ऐन्द्रावरुणं जागतम् ।

(कात्यायनसर्वानुक्रमणी

अस्यायमर्थः—ऋग्वेदेऽष्टममण्डले ४९ सूक्तात् ५९ सूक्तपर्यन्तमेकादश बालखिल्यसूक्तान्युच्यन्ते तेषामृषिदेवताच्छन्दांसि कात्यायनो ऽनुक्रमते—

अभि प्र वः सुराधसम्० (ऋ० ८।४९) सूक्तस्य दश ऋचस्तासां प्रस्कण्व ऋषिः । छन्दः प्रगाथाः । देवता तु इन्द्र इति सर्वत्र वर्तते । तत्रानुक्त इन्द्रो देवता ज्ञेया यत्र वैशिष्ठ्यं तत्र वक्ष्यत इति परिभाषितम् ।

प्र सु श्रुतं सुराधसम्० (ऋ० ८ । ५०) सूक्तस्य पुष्टिगुः ऋषिः । देवताच्छन्दसी पूर्ववत् ।

यथा मनौ सांवरणौ० (ऋ० ८ । ५१) सूक्तस्य श्रुष्टिगुः ऋषिः । देवताच्छन्दसी पूर्ववत् ।

यथा मनौ विवस्वति० (ऋ० ८ । ५२) सूक्तस्य आयुः ऋषिः । देवताच्छन्दसी पूर्ववत् ।

उपमं त्वा मघोनाम्० (ऋ० ८।५३) सूक्तस्याष्टौ ऋचस्तासां मेध्य ऋषिः । देवताच्छन्दसी पूर्ववत् ।

एतत् त इन्द्र वीर्यम्० (ऋ० ८ । ५४) सूक्तस्य मातरिश्वा ऋषिः । 'आ नो विश्वे सजोषसः०' (ऋ० ८।५४।३) इति तृतीयस्य मन्त्रस्य विश्वे देवा देवताः । अन्येषामिन्द्र एव देवता पूर्ववत् । छन्दः प्रगाथाः ।

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यम्० (ऋ० ८ । ५५) सूक्तस्य पञ्च ऋचस्तासां कृश ऋषिः । छन्दो गायत्री । तृतीयपञ्चम्योः ऋचोस्तु अनुष्टुप् छन्दः, तस्मात् प्रथम-द्वितीयचतुर्थानामेव गायत्री छन्द इति बोध्यम् । इन्द्रो देवता पूर्वतो ऽनुवर्तते, प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिश्च ।

प्रति ते दस्यवे वृक० (ऋ० ८।५६) सूक्तस्य पृषध्र ऋषिः । अत्र या ऽन्त्या पञ्चमी ऋक् तस्या अग्निसूर्यौ देवते । पङ्क्तिश्छन्दः । शिष्टानां गायत्री छन्दः । इन्द्रो देवता इत्यनुवर्तत एव ।

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण० (ऋ० ८।५७) सूक्तस्य चतस्र ऋचस्तासां मेध्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः ।

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्त० (ऋ० ५।५८) सूक्तस्य तिस्र ऋच-स्तासां मेध्य ऋषिः, त्रिष्टुप् च छन्द इति पूर्वतोऽनुवर्तते । विश्वे देवा देवताः । आद्ये=प्रथमे मन्त्रे ऋत्विक्स्तुतिरपि देवता ।

इमानि वां भागधेयानि सिस्रतः० (ऋ० ८।५९) सूक्तस्य सप्त ऋच-स्तासां सुपर्ण ऋषिः । । इन्द्रावरुणौ देवते । जगती छन्दः ।

उक्तप्रकारेण बालखिल्यऋचामृषिदैवतछन्दांसि कात्यायनेनानुक्रान्तानि । नहि परिशिष्टानामृषिदैवतछन्दास्यनुक्राम्यन्ते तत ऋक्संहितान्तर्गता एव बालखिल्य-ऋचो न तु परिशिष्टाः ।

३—बालखिल्यऋचां ब्राह्मणे ऽपि सद्भावः । तथाहि—

क. इन्द्र नेदीय एदिहीतीन्द्रनिहवः प्रगाथः ।

(ऐ० ब्रा० ४ । २३)

अस्यायमर्थः—'इन्द्र नेदीय एदिहि०' (ऋ० ८ । ५३ । ५) इत्यादिः इन्द्रनिहवः प्रगाथ उच्यते । इयं बालखिल्य ऋगेव ।

ख. स यद्यैन्द्रावरुणे रोहेत् सौपर्णे रोहेत् ।

(ऐ० ब्रा० ६ । २५)

अस्यायमर्थः—स प्रतिष्ठाकामो यद्यैन्द्रावरुणं सूक्तं रोहणार्थं निश्चिनुयात् तदा सौपर्णं[1] सूक्तं चिनोतु । "इमानि वां भागधेयानि" (ऋ० ८ । ५६ । १) इति सौपर्णमैन्द्रावरुणं सूक्तं बालखिल्येष्वेव दृश्यते । 'अयं हि ते अमर्त्य०' (ऋ० १० । १४४ । १) इति दशमे मण्डलेऽपि सुपर्णस्यैकं सूक्तं परं तदैन्द्रं सूक्तं नत्वैन्द्रा-वरुणम् ।

ग. तान्येतानि सहचराणीत्याचक्षते । नाभानेदिष्टं, बालखिल्या, वृषाकपिम्, एवयामरुतम्, तानि सहैव शंसेत् ।

(ऐ० ब्रा० ५ । १५)

अस्यायमर्थः—नाभानेदिष्टं[2] सूक्तद्वयम्, बालखिल्या[3] मन्त्राः, वृषाकपिदृष्टं[4] सूक्तम्, एवयामरुन्नाम्ना[5] महर्षिणा च दृष्टं सूक्तम्, तान्येतानि चत्वारि सहचराण्युच्यन्ते तानि सहैव शंसेत्=पठेत् इति बालखिल्यानां शंसने प्रयोग ऐतरेयब्राह्मणे दृश्यते ।

एवमृग्वेदस्य ब्राह्मण ऐतरेये बालखिल्यानां सद्भावात् संहितान्तर्गता एव बालखिल्या न तु परिशिष्टाः ।

१—यस्य सूक्तस्य सुपर्णं ऋषिः ।

२—ऋ० १० । ६१ । ऋ० १० । ६२ ।

३—ऋ० ८ । ४९—५९ ।

४—ऋ० १० । ८६ ।

५—ऋ० ५ । ८७ ।

४. ऋषिपरम्परा ऽपि बालखिल्यान् रक्षति । तथाहि—

क. ऐतरेये बालखिल्यमन्त्राः प्रतीकनिर्देशेनोक्ताः । स्ववेदगता हि मन्त्राः प्रतीकेनोच्यन्ते । ब्राह्मणेषु स्ववेदातिरिक्ता मन्त्राः समस्ता पठ्यन्ते ।

ख. कात्यायनानुक्रमण्यां बालखिल्यानामृषिदैवतच्छन्दांसि निर्दिष्टानीत्युक्तं प्राक् ।

ग. यन् नाभानेदिष्टो बालखिल्यो वृषाकपिरेवयामरुत् तस्मात् तानि सार्द्धमेवोपेयुः ।

(गो० ब्रा० उ० ६ । ७)

घ. यन् नाभानेदिष्टं पूर्वं शस्यत उत्तरा बालखिल्याः ।

ता० ब्रा० २० । ६ । २)

ङ. तस्मादाहुः कस्माद् बालखिल्या इति ।

(श० ब्रा० ३० । ८)

एवं सर्वेषु ब्राह्मणेषु बालखिल्यप्रवादा उपलभ्यन्ते ।

५—महर्षेः साक्षाद् दर्शनमप्यासीत् ।

कथमासां बालखिल्यसंज्ञा ?

अथेदं विचार्यते—कथं बालखिल्यमन्त्राः, बालखिल्यसूक्तानि बालखिल्या ऋषयः । खिलसूक्तानीत्यपि केचित् । इति नामकरणम् । तत्रोच्यते—

बहुकालपर्यन्तमेते मन्त्रा असाक्षात्कृतार्था आसन् । एभ्यः पूर्वे परे च मन्त्राः साक्षात्कृतार्थाः प्रागासुः । खिलभूता ह्येते ऽवर्तन्त । यथा सस्याढ्ययोः क्षेत्रयो र्मध्ये यदसंस्कृतमकृष्टमसस्याढ्यं क्षेत्रं भवति तत् खिलमित्युच्यते । पश्चान् महर्षिभिरेते ऽपि साक्षात्कृताः । साक्षात्करणे चासां बालमात्रं सूक्ष्ममेवान्तरमासीत् ततो बालखिल्यसंज्ञा । यस्मादेते पूर्वमसाक्षात्कृता अतिष्ठन् तस्मादासामृचां खिलसंज्ञा प्रवृत्ता । अर्थदृष्ट्या परिशिष्टा हि ते । तत्साम्यात् परिशिष्टानामपि खिलसंज्ञा प्रसिद्धेत्येके ।

अथवा बालखिल्याः प्राणा उच्यन्ते । तथाहि—

प्राणा वै बालखिल्याः............यद्वा उर्वरयोरसंभिन्नं भवति खिल इति वै तदाचक्षते । बालमात्रादु हेमे प्राणाः असंभिन्नास्ते यद् बालमात्रादसंभिन्न स्तस्माद् बालखिल्याः ।

(श० ब्रा० ८ । ३ । ४ । १)

बालखिल्यसूक्तेषु प्राणमहिमा वर्ण्यते तस्मादेषां बालखिल्यसंज्ञा । तथाहि— बालखिल्यसूक्तेषु महर्षिनिर्दिष्टा देवता अधस्तनप्रकारेण ज्ञेया ।

ऋ० ८।४९–५३–इन्द्रो देवता । ऋ० ८।५४। १,२,५–८।–इन्द्रो देवता।
ऋ० ८।५४।३,४।–विश्वे देवा देवताः । ऋ० ८।५५।–प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिर्देवता। ऋ० ८।५६।१—४।—प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिर्देवता ।
ऋ० ८।५६।५।–अग्निसूर्यौ देवते। ऋ०८।५७।अश्विनौ देवते।
ऋ० ८।५८।१। ऋत्विजो देवताः । ऋ० ८।५८।२ ३। विश्वे देवा देवताः।
ऋ० ८।५९।—इन्द्रावरुणौ देवते ।

एता बालखिल्यमन्त्रनिर्दिष्टा देवताः प्राणवचना इति ह विज्ञायते[1] । तथाहि—

क. प्राण इन्द्रः । श० ब्रा० ६ । १ । २ । ८ ॥
ख. प्राणा वै विश्वे देवाः श० ब्रा० १४ । २ । २ । ३७ ॥
ग. नासिके[2] अश्विना । श० ब्रा० १२ । १ । ९ । १४ ॥
घ. अश्विनौ प्राणापानौ । महर्षिभाष्यम् । यजु० २१ । ६० ॥
ङ. प्राणा सर्वे ऋत्विजः । ऐ० ब्रा० ६ । १४ ॥
च. इन्द्रावरुणौ प्राणोदानवत् प्रियबलिनौ । महर्षिभाष्यम् ऋ० ४ । ४१ । १ ॥
छ. अग्निर्वै प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । १९ ॥
ज. आदित्यो वै प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
झ. कण्व इति मेधाविनामसु पठितम् । निघण्टु ३ । १५ ॥

(प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः । प्रशब्दो ऽत्यन्तवचनो ऽत एवापत्यार्थे । जनकात् पुत्रो ऽधिकगुणो ऽपेक्षते । अस्यायं पुत्रः अस्मादप्यधिकगुण इत्यर्थः । तथा चोक्तं यास्केन—

१—विज्ञानग्रन्थेषु ब्राह्मणेषु प्रतिपाद्यत इत्यर्थः ।
२—नासिकाप्रभवौ प्राणापानावित्यर्थः ।

मगन्दः कुसीदी ··· तदपत्यं प्रमगन्दः । अत्यन्तकुसीदिकुलीनः ।
(निरुक्त ६ । ३२)

प्रस्कण्वस्य=अत्यन्तमेधाविनो दानस्तुतिः । प्राणसंयमनेन वै मेधावी भवति)

अथात्र प्रथमां वालखिल्यऋचं प्राणविद्यापरतया महर्षिनिर्दिष्टदिशा दिङ्मात्रं व्याख्यातुं प्रयते—

ओ३म् । अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥
(ऋ० ८ । ४९ । १)

भाष्यम्— हे साधक ! त्वं (वः) एकवचने बहुवचनमात्मशक्तिप्रकर्षद्योतनार्थम् । वः=तवात्मनः संबन्धिनं (सुराधसम्) शोभनं विद्यायोगादिधनं यस्मात् तम् । "(सुराधसः) शोभनानि विद्याचक्रवर्तिराज्यसंबन्धीनि राधांसि धनानि येषां तानेवं भूतान्" महर्षिभाष्यम् । ऋ० १।२३।६॥ (इन्द्रम्) प्राणम् (अभि) अभिलक्ष्य (प्र+अर्च) पूजय सत्कुरु प्राणं संयमयेत्यर्थः (यथा विदे) यथा विदुषे स्वगुरवे शिष्यः सत्करोति तद्वत् (मघवा) यस्मिन् प्राणे विद्यायोगादिरूपं बहु धनं विद्यते स बहुधनः (पुरुवसुः) बहुकालपर्यन्तं वासयिता बहुजीवनप्रदः । "(पुरुवसुः) पुरूणां बहूनां वासयिता" महर्षिभाष्यम् ऋ० २ । १ । ५ (यः) प्राणः (जरितृभ्यः) वृद्धेभ्यो ऽपि स्तोतृभ्यः स्वोपासकेभ्यः, अथवा योगगुणसिद्धीनां वेदितृभ्यः "(जरितृभ्यः) योगगुणसिद्धीनां वेदितृभ्यः ।" महर्षिभाष्यम् ऋ० १ । १०६ । ६ ॥" (सहस्रेण इव) आयुरेव । इव शब्दो ऽत्रावधारणार्थः प्राणविद्या ऽवश्यमायुर्वर्धयतीत्यर्थः । "सहस्राय स्वाहेत्याह । आयुर्वै सहस्रम् । आयुरेवावरुन्धे" तै० ब्रा० ३ । ८ । १५ ॥ (शिक्षति) ददाति ।

एवं प्राणानां वालखिल्यसंज्ञा । प्राणविद्यापरत्वादेतानि सूक्तानि वालखिल्यसूक्तानीत्युच्यन्ते । वालखिल्यमन्त्राणामर्थद्रष्टार ऋषयोऽपि वालखिल्यनाम्ना प्रसिद्धाः । एते वालखिल्या ऋषयः इति । यथा "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"

इत्यन्तानां 'यज्जाग्रतो०' इत्यादीनां षण्णां मन्त्राणामर्थद्रष्टार ऋषयः शिवसंकल्पनाम्ना व्यवहृताः। यथा च 'ऋतं च सत्यंचा०' इत्याद्यघमर्षणमन्त्राणां द्रष्टा मधुच्छन्दसः पुत्रोऽघमर्षणनाम्ना प्रसिद्धः। बालखिल्यनामान ऋषय आसन् तत्कृतत्वादेतानि सूक्तानि बालखिल्यसूक्तानीत्यपसिद्धान्तः।

इत्थं बालखिल्यऋचां संहितान्तर्गतत्वात् तत्सहिता १०५२२ ऋक्संख्या समञ्जसी। अपबालखिल्यऋच ऋक्संख्यां मन्वाना अपास्ता इति।

(२)

त्रीणि त्रीणि अर्द्धर्चा ऋचः

ऋग्वेदे त्रीणि त्रीणि अर्द्धर्चा ऋचश्चतुर्नवति (९४) संख्यका विद्यन्ते। तासामेका दिङ्मात्रमुदाह्रियते—

अ॒ग्निं होता॑रं मन्ये॒ दास्व॑न्तं
वसुं॑ सू॒नुं सह॑सो जा॒तवे॑दसं॒ विप्रं॒ न जा॒तवे॑दसम्।
य ऊ॒र्ध्वया॑ स्वध्व॒रो दे॒वो दे॒वाच्या॑ कृ॒पा।
घृ॒तस्य॒ विभ्रा॑ष्टि॒मनु॑ वष्टि शो॒चिषा॒ऽऽजुह्वा॑नस्य स॒र्पिषः॑॥ १॥
(ऋ० १। १२७। १)

इयमेक ऋग् अस्यास्त्रयो भागाः। 'अग्निम्' इत्यारभ्य 'जातवेदसम्' पर्यन्तमेको भागः। 'य ऊर्ध्वया' इत्यारभ्य 'कृपा' पर्यन्तं द्वितीयो भागः। 'घृतस्य' इत्यारभ्य 'सर्पिषः' पर्यन्तं तृतीयो भागः। भागत्रयवत्त्वादियमृक् 'त्रीणि त्रीणि अर्द्धर्च ऋक्' इत्युच्यते।

महीदासेनास्या एकस्या ऋच ऋग्द्वयं क्रियते। 'अग्निं होतारं' इत्यारभ्य देवाच्या कृपा' पर्यन्तं द्वयोर्भागयोरेक ऋक् क्रियते। 'घृतस्य' इत्यारभ्य 'सर्पिषः' पर्यन्तं तृतीयस्य भागस्य द्वितीय ऋक् क्रियते। एतादृश्यश्चतुर्नवतिसंख्यकास्त्रीणि त्रीणि अर्द्धर्चा ऋच ऋग्वेदे सन्ति। अत्राह महीदासः —

"आसां परिमाणमाह

'अ॒ग्निं होता॑रं०' पञ्च। 'स हि शर्द्धो॑ न०' षट्।
'अ॒यं जा॑यत०' पञ्च। 'विश्वो॒ विहा॑याः०' तिस्रः।
'यं त्वं रथं॑०' पञ्च। 'प्र तद्वो॑चेयं०' षट्।

१—यजु० ३४। १-६। २—बालखिल्यऋचो वर्जयित्वा।

'एन्द्र याह्युप नः०' पञ्च । 'इमां ते वाचं०' चत्वारि ।
स नो नव्येभिः' वर्जम् ।
'इन्द्राय हि द्यौः०' सप्त । 'त्वया वयं०' षट् ।
'अवर्मह:०' एका 'वनोति हि०' एका ।
'आ त्वा जुवो०' षट् । स्तीर्ण०' पञ्च ।
'इमे वां सोमा०' एका, 'इमे ये ते सु वायो०' एका ।
'प्र सु ज्येष्ठं०' षट् 'ऊती देवानां०' वर्जम् ।
'सुषुमा यातम्०' त्रीणि । 'प्र प्र पूष्णः०' चतुष्कम् ।
'अस्तु श्रौषट्०' चत्वारि 'शचीभिर्नः' वर्जम् ।
'वृषन्निन्द्र०' पञ्च 'ये देवासो०' वर्जम् ।
'तव त्यन्नर्यम्०' एका । 'सखे सखायम्०' एका ।
'अया रुचा०' त्रीणि ।

एतास्त्रीणि त्रीण्यर्द्धर्चा ऋचो हवनीयाश्चतुर्नवतिसंख्या इति त्रीण्यर्द्धच ऋग्यवने । अध्ययने अर्द्धद्वयेन ऋगेका । अर्द्धर्चेनैकैव । ऋग्द्वये कर्तव्ये इत्यर्थः ।

(चरणव्यूह पृ० १६, २०)

अस्यायमर्थः—

ऋ० २ अष्टके, १ अध्याये, १२ वर्गे 'अग्निं होतारं०' इत्याद्याः पञ्च ऋचः—५
ऋ० „ „ १३ वर्गे 'स हि शर्धो न०' इत्याद्याः षड् ऋचः—६
ऋ० „ „ १४ वर्गे 'अयं जायत०' इत्याद्याः पञ्च ऋचः—५
ऋ० „ „ १५ वर्गे 'विश्वो विहायाः०' इत्याद्याः तिस्र ऋचः—३
ऋ० „ „ १६ वर्गे 'यं त्वं रथं०' इत्याद्याः पञ्च ऋचः—५
ऋ० „ „ १७ वर्गे 'प्र तद् वोचेयम्०' इत्याद्याः षड् ऋचः—६
ऋ० „ „ १८ वर्गे 'एन्द्र याह्युप नः०' इत्याद्याः पञ्च ऋचः—५
ऋ० „ „ १९ वर्गे 'इमां ते वाचम्०' इत्याद्याश्चतस्र ऋचः—४
अस्मिन् वर्गे याऽन्त्या ऋक् 'स नो नव्येभिः०' तां वर्जयित्वा ।

ऋ० २ अष्टके १ अध्याये २० वर्गे 'इन्द्राय हि द्यौः०' इत्याद्याः सप्त ऋचः-७
ऋ० " " २१ वर्गे 'त्वयां वयं०' इत्याद्याः षड् ऋचः-६
ऋ० " " २२ वर्गे 'अवर्मह:०' इत्येका, 'वनोति हि०' इति चैका-२
ऋ० " " २३ वर्गे 'आ त्वा जुवो०' इत्याद्याः षड् ऋचः-६
ऋ० " " २४ वर्गे 'स्तीर्णम्०' इत्याद्याः पञ्च ऋचः-५
ऋ० " " २५ वर्गे 'इमे वां सोमा०' इत्येका, इमे ये ते सु वायो० इति चैका ऋक्-२
ऋ० " " २६ वर्गे 'प्र सु ज्येष्ठम्०' इत्याद्याः षड् ऋचः-६
अस्मिन् वर्गे याऽन्त्या ऋक् 'ऊती देवानां०' तां वर्जयित्वा ।
ऋ० " २ अध्याये १ वर्गे 'सुषुमा यांतम्०' इत्याद्यास्तिस्र ऋचः-३
ऋ० " " २ वर्गे 'प्र प्र पूष्ण०' इत्याद्याश्चतस्र ऋचः-४
ऋ० " " ३ वर्गे 'अस्तु श्रौषट्०' इत्याद्याश्चतस्र ऋचः-४
अस्मिन् वर्गे याऽन्त्या ऋक् 'शचीभिर्नः०' तां वर्जयित्वा ।
ऋ० " " ४ वर्गे 'वृषन्निन्द्र०' इत्याद्याः पञ्च ऋचः-५
अस्मिन् वर्गे याऽन्त्या ऋक् 'ये देवासो०' तां वर्जयित्वा ।
ऋ० " ६ अध्याये २८ वर्गे 'तव त्यन्नर्यम्०' इत्येका ऋक्-१
ऋ० ३ अष्टके ४ अध्याये १२ वर्गे 'सखे सखायम्०' इत्येका ऋक्-१
ऋ० ७ अष्टके ५ अध्याये २४ वर्गे 'अया रुचा०' इत्याद्यास्तिस्र ऋचः-३

पूर्णसंख्या ९४

एताश्चतुर्नवति (९४) संख्यकास्त्रीणि त्रीणि अर्द्धर्चा ऋचो हवनीयाः=प्रयोगकाल एवासां चतुर्नवतिः संख्या । अध्ययनकाले त्वासां प्रत्येकस्या ऋच ऋग्द्वयं संपाद्यते । स च प्रकारः पूर्वं प्रदर्शितः । तथा सत्यासामृचां १८८ संख्या भवति ।

अयं भावः—महीदासो हवने त्वेकामेव ऋचं मन्यते परमध्ययनकाले ऋग्द्वयं स्वीकरोति । अध्ययनकालस्य या संख्या सैव ऋक्संख्या भवति । ततो महीदासमते ऋक्संख्याप्रसङ्गे ९४ संख्याऽधिका भवति । अतो महीदासमतेऽर्द्धर्चपक्षे १०४६६ ऋक्संख्या भवति । तच्चाग्रे विवेचिष्यते ।

(३)

(द्विपदाः)

लोके चतुष्पाद् श्लोको भवति। ऋचस्तु काश्चिदेकपदाः काश्चिद् द्विपदाः काश्चित् त्रिपदाः काश्चिच् चतुष्पदाः काश्चित् पञ्चपदा इत्यादिरूपेण नानाविधाः।

(एकपादवत्य ऋचः)

ऋग्वेदस्य दशसु मण्डलेष्वेकपदाः षडेव। तथाहि—

(चित्रम् १६)

संख्या	पूर्ण ऋचा	अक्षर संख्या	महर्षि निर्दिष्ट-छन्दोनाम	कात्यायन निर्दिष्ट-छन्दोनाम
१	असिंक्न्यां यजमानो न होता[1]	१०	याजुषी पङ्क्तिः	एकपदा विराट्
२	सिषक्तु न ऊर्ज्व्यस्य पुष्टेः[2]	१०	याजुषी पङ्क्तिः	एकपदा विराट्
३	उरौ देवा अनिबाधे स्याम[3]	१०	याजुषी पङ्क्तिः	एकपदा विराट्
४	उरौ देवा अनिबाधे स्याम[4]	१०	याजुषी पङ्क्तिः	एकपदा विराट्
५	आ वां सुम्ने वरिमन् त्सूरिभिः ष्याम्[5]	११	आसुरी पङ्क्तिः	एकपदा त्रिष्टुप्
६	भद्रं नो अपि वातय मनः[6]	१०	आसुरी त्रिष्टुप्	एकपदा विराट्

उक्तं च प्रातिशाख्ये—

न दाशतय्येकपदा काचिदस्तीति वै यास्कः।
अन्यत्र वैमद्याः सैका दशिनी मुखतो विराट्॥
आ वां सुम्ने, असिंक्न्यां, द्वे उरौ देवाः, सिषक्तु नः॥

ऋ० प्रा० १७। ५६, ५७॥

अस्यायमर्थः–यस्या ऋचो विमद ऋषिस्ताम् 'भद्रं नो अपि० ऋ० १०। २०। १॥ ऋचां वर्जयित्वा दाशतयी ऋग्वेददशमण्डलान्तर्गता काचिदेकपदा ऋचा नास्तीति वै यास्को मन्यते। सैका ऋक् दशाक्षरा विराट् मुखतः सूक्तस्यादौ वर्तते।

ऋग्वेद एकपदा ऋचः पञ्चान्या अपि सन्ति—

आ वां सुम्ने० ऋ० ६। ६३। ११॥ असिंक्न्यां० ऋ० ४। १७। १५॥

उरौ देवाः० इति ऋग् द्वयोः स्थानयोर्ऋग्वेदे वर्तते। ऋ० ५। ४२। १७॥

१. ऋ० ४। १७। १५॥ २. ऋ० ५। ४१। २०॥ ३. ऋ० ५। ४२। १७॥
४. ऋ० ५। ४३। १६॥ ५. ऋ० ६। ६३। ११॥ ६. ऋ० १०। २०। १॥

ऋ० ५ । ४३ । १६ ॥ सिषक्तु नः । ऋ० ५ । ४१ । २० एवं षडेकपदा ऋच ऋग्वेदे सन्तीति बोध्यम् ।

छन्दःसंख्यायामप्युक्तम्—

एकपदास्तु षट् प्रोक्ताः । (छन्दः संख्या ८)

'भद्रं नो अपि०' ऋ० १० । २० । १ इयमेकैवैकपदा । अन्या याः पञ्चैकपदाः सन्ति ताः स्वोपरितनमन्त्रस्यान्तभागो न तु स्वतन्त्रा ऋचः । तन्मते पञ्च संख्या न्यूना भविष्यति । 'भद्रं नो अपि०' ऋक् तु सूक्तस्यादौ वर्तते सा न कस्या अपि ऋचोऽन्तभागो भवितुमर्हति सूक्तादित्वात् । उक्तं च प्रातिशाख्ये—

अन्यत्र वैमद्याः सैका दशिनी मुखतो विराट् ।
आहुस्त्वेकपदा अन्ये अध्यासानेकपातिनः ॥

ऋ० प्रा० १७ । ५६, ५७ ॥

अस्यायमर्थः —यस्या एकपदाया ऋचो विमद ऋषिः सैका ऋक् 'भद्रं नो अपि०' इत्येषा मुखतः सूक्तस्यादौ वर्तते दशाक्षरा विराट् । अन्या एकपदास्तु आचार्याः केचिद् एकपातिन अध्यासान् पूर्वऋचामन्तभागान् मन्यन्ते । इति ।

(द्विपादवत्य ऋचः)

ऋग्वेदे सप्तनवतिः (९७) द्विपादवत्य ऋचः सन्ति ।

ताश्चाधोनिर्दिष्टचित्रेण ज्ञेयाः ।

द्विपदा चित्रम्

(चित्रम् १७)

क्रमसंख्या	मण्डल	सूक्त	मन्त्र	महर्षि निर्दिष्ट छन्दोनाम	कात्यायन निर्दिष्ट-छन्दो नाम	स्वरूपेणाक्षरसंख्या
१	१	७०	६	याजुषी पङ्क्तिः	द्विपदा विराट्	२०
२	५	२४	१	साम्नी बृहती	द्विपदा विराट्	१८
३	५	२४	२	भुरिग्बृहती[1]	द्विपदा विराट्	१६

१—भुरिक् साम्नी बृहतीत्यर्थः ।

२

क्रमसंख्या	मण्डल	सूक्त	मन्त्र	महर्षि निर्दिष्ट छन्दोनाम	कात्यायन निर्दिष्ट-छन्दो नाम	ऋक्संहिताक्षरसंख्या
४	५	२४	३	भुरिग्बृहती[1]	द्विपदा विराट्	१९
५	५	२४	४	भुरिग्बृहती[1]	द्विपदा विराट्	१९
६	६	१०	७	प्राजापत्या बृहती	द्विपदा विराट्	२०
७	६	१७	१५	आर्ची उष्णिक्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२१
८	६	४७	२५[2]	विराड् गायत्री	द्विपदा त्रिष्टुप्	२२
९	७	१७	१	आर्ची [3]उष्णिक्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२२
१०	७	१७	२	साम्नी त्रिष्टुप्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२२
११	७	१७	३	आर्ची उष्णिक्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२१
१२	७	१७	४	आर्ची उष्णिक्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२१
१३	७	१७	५	साम्नी पङ्क्तिः	द्विपदा त्रिष्टुप्	२०
१४	७	१७	६	आर्ची उष्णिक्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२१
१५	७	१७	७	आर्ची उष्णिक्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२१
१६	७	३२	३	साम्नी पङ्क्तिः	द्विपदा विराट्	२०
१७	७	३४	१	भुरिक् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
१८	७	३४	२	भुरिक् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
१९	७	३४	३	आ[4]र्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
२०	७	३४	४	आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१८
२१	७	३४	५	भुरिक् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
२२	७	३४	६	नि[5]चृत् त्रिपात् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
२३	७	३४	७	निचृत् त्रिपात् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
२४	७	३४	८	निचृत् त्रिपात् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०

१—भुरिक् साम्नी बृहतीत्यर्थः ।

२—महर्षिमते ऋ० ६ । ४७ । २४ ऋगपि विराड् गायत्री ।

३—भुरिगार्ची उष्णिगित्यर्थः ।

४—स्वराडार्ची गायत्रीत्यर्थः ।

५—इयं प्रतिष्ठा निचृद् गायत्री त्रिपादेकविंशत्यक्षरा भवति । एकाक्षरन्यूना निचृत् ।

त्मना समत्सु हिनोत, यज्ञं दधात केतुं, जनाय वीरम् । ऋ० ७।३४।६ एवमग्रेऽपि योज्यम् ।

३

क्रमसंख्या	मण्डल	सूक्त	मन्त्र	महर्षि निर्दिष्ट छन्दोनाम	कात्यायन निर्दिष्ट-छन्दोनाम	अव्यूहेना-क्षरसंख्या
२५	७	३४	९	निचृत् त्रिपाद् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
२६	७	३४	१०	निचृत् त्रिपाद् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
२७	७	३४	११	निचृत् त्रिपाद् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
२८	७	३४	१२	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
२९	७	३४	१३	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
३०	७	३४	१४	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
३१	७	३४	१५	निचृत् त्रिपाद् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
३२	७	३४	१६	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
३३	७	३४	१७	आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१८
३४	७	३४	१८	निचृत् त्रिपाद् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
३५	७	३४	१९	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
३६	७	३४	२०	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
३७	७	३४	२१	निचृत् त्रिपाद् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
३८	७	५६	१	आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१८
३९	७	५६	२	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
४०	७	५६	३	प्राजापत्या बृहती	द्विपदा विराट्	२०
४१	७	५६	४	प्राजापत्या बृहती	द्विपदा विराट्	२०
४२	७	५६	५	प्राजापत्या बृहती	द्विपदा विराट्	२०
४३	७	५६	६	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
४४	७	५६	७	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
४५	७	५६	८	आर्ची उष्णिक्	द्विपदा विराट्	२१
४६	७	५६	९	भुरिग् आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
४७	७	५६	१०	आर्ची उष्णिक्	द्विपदा विराट्	२१
४८	७	५६	११	निचृद् आर्ची उष्णिक्	द्विपदा विराट्	२०
४९	८	१९	२७	[1]भुरिग् आर्ची विराड् उष्णिक्	द्विपदा विराट्	२०
५०	८	२९	१	आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१८
५१	८	२९	२	आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१८
५२	८	२९	३	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०

१. व्याख्यानतः समाधेयम् ।

४

क्रमसंख्या	मण्डलम्	सूक्तम्	मन्त्रः	महर्षि निर्दिष्ट छन्दोनाम	कात्यायन निर्दिष्ट-छन्दोनाम	ऋग्गुहेना-क्षरसंख्या
५३	८	२९	४	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
५४	८	२९	५	विराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२२
५५	८	२९	६	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
५६	८	२९	७	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
५७	८	२९	८	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
५८	८	२९	९	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
५९	८	२९	१०	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
६०	८	४६	१३	निचृद् गायत्री	द्विपदा जगती	२३
६१	८	४६	३०	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
६२	९	६७	१६	भुरि[1]ग् आर्ची विराड गायत्री	नित्य द्विपदा गायत्री	१६
६३	९	६७	१७	भुरि[1]ग् आर्ची विराड् गायत्री	नित्य द्विपदा गायत्री	१६
६४	९	६७	१८	भुरि[1]ग् आर्ची विराड् गायत्री	नित्य द्विपदा गायत्री	१६
६५	९	१०७	३	पि[2]पीलिका मध्या गायत्री	द्विपदा विराट्	२१
६६	९	१०७	१६	पि[2]पीलिका मध्या गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
६७	९	१०९	१	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
६८	९	१०९	२	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
६९	९	१०९	३	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
७०	९	१०९	४	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
७१	९	१०९	५	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
७२	९	१०९	६	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
७३	९	१०९	७	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
७४	९	१०९	८	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
७५	९	१०९	९	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
७६	९	१०९	१०	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
७७	९	१०९	११	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०

१—आर्ची विराड् गायत्री। भुरिग् व्याख्यानतः समाधेयम्।

२—अनियताक्षरा। आद्यन्तौ पादौ बह्वक्षरौ मध्येऽल्पाक्षरः पादः। द्र०—ऋ० प्रा० ३। ५७

५

क्रमसंख्या	मण्डलम्	सूक्तम्	मन्त्रः	महर्षि निर्दिष्ट छन्दोनाम	कात्यायन निर्दिष्ट-छन्दोनाम	अक्षरसंख्या-ऋग्नुसारसंख्या
७८	९	१०९	१२	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
७९	९	१०९	१३	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
८०	९	१०९	१४	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
८१	९	१०९	१५	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
८२	९	१०९	१६	पादनिचृद् गायत्री	द्विपदा विराट्	२१
८३	९	१०९	१७	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
८४	९	१०९	१८	आर्ची भुरिग् गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
८५	९	१०९	१९	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
८६	९	१०९	२०	आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१८
८७	९	१०९	२१	आर्ची गायत्री	द्विपदा विराट्	१८
८८	९	१०९	२२	आर्ची स्वराड् गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
८९	१०	१५७	१	द्विपदा त्रिष्टुप्	द्विपदा त्रिष्टुप्	१८
९०	१०	१५७	२	द्विपदा त्रिष्टुप्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२०
९१	१०	१५७	३	द्विपदा त्रिष्टुप्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२१
९२	१०	१५७	४	द्विपदा त्रिष्टुप्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२२
९३	१०	१५७	५	द्विपदा त्रिष्टुप्	द्विपदा त्रिष्टुप्	२२
९४	१०	१७२	१	पिपीलिका मध्या गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
९५	१०	१७२	२	पिपीलिका मध्या गायत्री	द्विपदा विराट्	१९
९६	१०	१७२	३	पिपीलिका मध्या गायत्री	द्विपदा विराट्	२०
९७	१०	१७२	४	पिपीलिका मध्या गायत्री	द्विपदा विराट्	२०

१—अत्र केचिदाहु—'एकपदा द्विपदा त्रिष्टुबुदाहरणानि मृग्याणि' । इति रभसोक्तिमात्रम् । ऋ० १०। १५७।४, ५ द्विपदा त्रिष्टुप् । ऋ० ६ ६३।३ एकपदा त्रिष्टुप् । तथा चोक्तं कात्यायनानुक्रमण्याम्—

क त्यैकपदान्तं त्रैष्टुभम् । कात्या० सर्वा० ६ । ६३ ।

अस्यायमर्थः—क त्या वल्गू० ऋ० ६।६३ सूक्तस्यान्त एकपदा त्रिष्टुप् शिष्टास्त्रिष्टुभः ।

इमा नु कं भुवन आप्त्यः साधनो वा भौमनो वैश्वदेवं द्वैपदं त्रैष्टुभम् ।

कात्या० सर्वा० १० । १५७ ॥

अस्यायमर्थः—इमा नु कं० ऋ० १० । १५७ । सूक्तस्य भुवन आप्त्य ऋषिः साधनो भौमनो वा ऋषिः । विश्वे देवा देवता । द्विपदा त्रिष्टुप् छन्दः ।

(अन्येषां मतम्)

अन्येत्वाहुः सन्त्यन्या अपि षष्टिर्द्विपदाः । 'पश्वा न तायुं०' (ऋ० १ । ६५–७०) इत्यादिषट्सूक्तेषु यास्त्रिंशच् चतुष्पदा ऋचस्ता हवने द्विपदाः कृत्वा षष्टिः क्रियन्ते । ऋक्संख्या–गणना प्रसङ्गे ताः षष्टिः गणनीया न तु त्रिंशत् । तथाहि–

(त्रिंशच् चतुष्पदाः, षष्टिर्द्विपदाः)

(चित्रम् १८)

		अन्यमते				महर्षिमते			
मण्डलम्	सूक्तम्	द्विपदाः	मन्त्राः	छन्दः	अक्षरसंख्या	चतुष्पदाः	मन्त्राः	छन्दः	अक्षरसंख्या
१	६५	१०	१	द्विपदा विराट्	२०	५	१	पङ्क्तिः	४०
			२	द्विपदा विराट्	२०				
			३	द्विपदा विराट्	१९		२	निचृत् पङ्क्तिः	३९
			४	द्विपदा विराट्	२०				
			५	द्विपदा विराट्	२०		३	निचृत् पङ्क्तिः	३९
			६	द्विपदा विराट्	१९				
			७	द्विपदा विराट्	१९		४	विराट् पङ्क्तिः	३८
			८	द्विपदा विराट्	१९				
			९	द्विपदा विराट्	१९		५	निचृत् पङ्क्तिः	३९
			१०	द्विपदा विराट्	२०				
	६६	१०	१	द्विपदा विराट्	२०	५	१	पङ्क्तिः	४०
			२	द्विपदा विराट्	२०				
			३	द्विपदा विराट्	२०		२	पङ्क्तिः	४०
			४	द्विपदा विराट्	२०				
			५	द्विपदा विराट्	२०		३	विराट् पङ्क्तिः	४०
			६	द्विपदा विराट्	२०				
			७	द्विपदा विराट्	१८		४	विराट् पङ्क्तिः	३८
			८	द्विपदा विराट्	२०				
			९	द्विपदा विराट्	१९		५	विराट पङ्क्तिः	३८
			१०	द्विपदा विराट्	१९				